# गद्य रत्नावली

अर्थात्

आदर्श और उपयोगी निबन्धों का संग्रह

( हाई स्कूल कक्षाओं के लिए )

संकलनकर्ता व संपादक

नरोत्तमदास एम० ए०

प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद

[ मूल्य १।।)

प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रयाग

मुद्रक

गोपाल कृष्ण अग्रवाल

हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, प्रयाग।

# भूमिका

राष्ट्रीय सरकार की शिक्षा-योजनाओ को ध्यान मे रखकर ही इस संकलन को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। पाठो का चुनाव करते समय उत्तर प्रदेशीय इन्टरमीडियट बोर्ड की पाठ्य संबंधी विज्ञप्ति का भी पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है। इस छोटे से संग्रह के अंतर्गत विभिन्न शैलियो के प्रतिनिधित्व के साथ पाठ्य विषयो के नानात्व का सामंजस्य, नैतिकता, आशावादिता, चरित्र-संगठन आदि गुणो को ध्यान मे रखते हुए सामान जुटाना सरल काम नही। फिर भी पाठ-चयन में सतर्कता और सावधानी से काम लिया है।

इस संकलन मे जहाँ एक ओर शैलीकारो की दृष्टि से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्री गुलाबराय, प० हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि विभिन्न शैलियो के प्रतिनिधि के रूप मे आये है, वहाँ दूसरी ओर माननीय सम्पूर्णानंद और श्री आचार्य विनोबा भावे अपनी ओजस्विनी शैली के साथ एक दूसरे ही वर्ग की झलक देते है। प्रारंभिक गद्य-लेखको मे हिंदी-गद्य के ऐडिसन और स्टील—प० बालकृष्ण भट्ट—को भी संकलन मे यथास्थान दिया गया है। गद्य-गीत-काव्य के दो प्रमुख लेखक—श्री राय कृष्णदास और श्री वियोगी हरि—अपने पृथक् रूप मे अपनाये गये है। इस प्रकार कहानी साहित्य के

विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रेमचंद, और चतुरसेन शास्त्री जैसे उच्चकोटि के कलाकारों को ही स्थान दिया गया है।

विभिन्न शैलियों का ध्यान रखते हुये विषयों की अनेकरूपता को भी निभाया गया है। पाठ्य विषयों मे साधारण नीति और सदाचार से सम्बंध रखने वाले, मनोरंजन के साथ शिक्षा देने वाले, साम्प्रदायिकता के भेदभाव को दूर करने वाले तथा वैज्ञानिक निबंध रक्खे गये है। प्रारंभ का 'प्रति दिन की प्रार्थना' हमें पूर्णता की ओर ले जाने वाला है और "शिक्षा" आदर्श नागरिक का साँचा प्रस्तुत करता है। भुवनेश्वर के प्राचीन मंदिर और दीपावली तथा मिट्टी की मूर्तियाँ हमारी संस्कृति को प्रस्तुत करते हैं। 'हमारा सनातन पंचायत राज्य' हमारी विशाल राष्ट्रीयता का द्योतक है। इसी प्रकार कहानियाँ केवल कहानियों के उद्देश्य से नहीं है। प्रेमचंद की 'सज्जनता का दंड' मानव चरित्र को ऊँचा उठाने वाली है। 'झंडा' देश भक्ति और देश प्रेम का प्रतीक है। "पेनिसिलिन" जैसा आधुनिकतम आविष्कार अपना अलग ही आकर्षण रखता है।

इतना होते हुए भी यह कहना कठिन है कि विद्यार्थी इसे अपने जीवन के साथ कितना घुला-मिला सकेंगे, क्योंकि यह काम शिक्षार्थी का नहीं, वरन् आदर्श शिक्षक का है। पाठ-रीति झाँकी की झंकार है, यदि शिक्षक ने अपनी योग्यता और तत्परता से विद्यार्थियों की जीवन-ज्योति जगाने में इसका ठीक

ढंग से सदुपयोग न किया। ऐसी पढ़ाई से लाभ ही क्या, जिससे वयस्क बालकों के मानसिक और अंतर्जगत में मातृ-भाषा, राष्ट्र जाति और चरित्र-निर्माण का पूरा-पूरा महत्त्व अंकित न हो सके। निश्चय ही अध्यापक इस पुनीत अनुष्ठान के पुरोहित हैं। उनके इस यज्ञ में यह संग्रह कहाँ तक सहायक होगा, नही कहा जा सकता।

संग्रह मे मेरा अपना कुछ नहीं, अनेक कलाकारों की अनमोल कृतियों को सजा भर दिया है। मंजरी के अंतर्गत जो कृतियाँ सौरभ विखेर रही है, इसके लिए इन पंक्तियों का लेखक हृदय से कृतज्ञ है और आशान्वित है कि विद्यार्थीगण सौरभ से प्रभाहित हुये बिना न रह सकेंगे।

—सम्पादक

—:०:—

# विषय-सूची

—:०:—

# १—प्रति दिन की प्रार्थना

[ लेखक—आचार्य विनोबा भावे ]

आप महाराष्ट्र प्रांत के निवासी हैं। देश और समाज की सेवा करना ही आपके जीवन का व्रत है। महात्मा गाँधी जी के आप अनन्य अनुयायियो में से हैं। आप संतो की भाँति अत्यन्त सरल और पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। आप भूदान आंदोलन के कर्णधार हैं।

आप हिन्दी, मराठी, गुजराती और अंग्रेजी इत्यादि भाषाओं के मर्मज्ञ हैं। दर्शनशास्त्र मे आपकी अच्छी गति है। आपके विचार बड़े गम्भीर और भावपूर्ण होते हैं। आपने कई ग्रन्थ लिखे हैं, जिनका हिन्दी में अनुवाद भी हुआ है।

आपकी भाषा सरल और शैली भावात्मक है।

ॐ असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय ॥

हे प्रभो, मुझे असत्य मे से सत्य मे ले जा। अंधकार में से प्रकाश में ले जा। मृत्यु मे से अमृत में ले जा।

इस मंत्र में हम कहाँ है, अर्थात् हमारा जीव-स्वरूप क्या है, और हमे कहाँ जाना है, अर्थात् हमारा शिव-स्वरूप क्या है, यह दिखाया है। हम असत्य में हैं; अंधकार में हैं, मृत्यु में हैं। यह हमारा जीव-स्वरूप है। हमे सत्य की ओर जाना है, प्रकाश की ओर जाना है, अमृतत्व को प्राप्त कर लेना है। यह हमारा शिव-स्वरूप है।

दो विन्दु निश्चित हुए कि सुरेखा निश्चित हो जाती है। जीव और शिव ये दो विन्दु निश्चित हुए कि परमार्थ-मार्ग तैयार हो जाता है। मुक्त के लिए परमार्थ-मार्ग नहीं है, कारण उसका जीवन-स्वरूप जाता रहा है। शिव-स्वरूप का एक ही विन्दु बाकी रह गया है, इस लिए मार्ग पूरा हो गया। जड़ के लिए परमार्थ-मार्ग नहीं है। कारण, उसे शिव-स्वरूप का भान नहीं है। जीव-स्वरूप का एक ही विन्दु नजर के सामने है, इसलिये मार्ग आरम्भ ही नहीं होता। मार्ग बीच वाले लोगों के लिए है। बीच वाले लोग अर्थात् मुमुक्षु। उनके लिये मार्ग है और उन्ही के लिए इस मन्त्र वाली प्रार्थना है।

'मुझे असत्य मे से सत्य मे ले जा' ईश्वर से यह प्रार्थना करने के मानी हैं, 'मैं असत्य मे से सत्य की ओर जाने का बराबर प्रयत्न करूँगा', इस तरह की एक प्रतिज्ञा सी करना। (प्रयत्नवाद की प्रतिज्ञा के विना प्रार्थना का कोई अर्थ ही नही रहता) यदि मैं प्रयत्न नहीं करता और चुप बैठ जाता हूं, अथवा विरुद्ध दिशा में जाता हूँ, और जबान से 'मुझे असत्य में से सत्य मे ले जा' यह प्रार्थना किया करता हूं, तो इसमें क्या मिलने का ? नागपुर से कलकत्ते की ओर जाने वाली गाड़ी मे बैठ कर हम 'हे प्रभो, मुझे बम्बई ले जा' की कितनी ही प्रार्थना करें, तो उसका क्या फायदा होना है ? असत्य से सत्य की ओर ले चलने की प्रार्थना करनी हो तो असत्य से सत्य की ओर जाने का प्रयत्न भी करना चाहिये। प्रयत्न हीन प्रार्थना प्रार्थना ही नहीं हो सकती। इसलिये ऐसी प्रार्थना करने मे यह प्रतिज्ञा शामिल है कि मैं अपना रुख असत्य से सत्य की ओर करूँगा और अपनी शक्ति भर सत्य की ओर जाने का भरपूर प्रयत्न करूँगा।

प्रयत्न करना है तो फिर प्रार्थना क्यों ? प्रयत्न करना है इसी लिए तो प्रार्थना चाहिये। मै प्रयत्न करने वाला हूँ। पर फल मेरी मुट्ठी में थोड़े ही है। फल तो ईश्वर की इच्छा पर अवलंबित है। मै प्रयत्न करके भी कितना करूँगा ? मेरी शक्ति कितनी अल्प है ? ईश्वर की सहायता के बिना मै अकेला क्या कर सकता हूँ, मै सत्य की ओर अपने कदम बढ़ाता रहूँ तो भी ईश्वर की कृपा के बिना मै मंजिल पर नही पहुँच सकता। मै रास्ता काटने का प्रयत्न तो करता हूँ, पर अंत में मै रास्ता काटूँगा कि बीच मे मेरे पैर ही कट जाने वाले हैं, यह कौन कह सकता है ? इसलिए अपने ही बल-बूते मै मंजिल पर पहुँच जाऊँगा, यह घमंड फिजूल है। काम का अधिकार मेरा है; पर फल ईश्वर के हाथ मे है। इसलिये प्रयत्न के साथ-साथ ईश्वर की प्रार्थना आवश्यक है। प्रार्थना के संयोग से हमे बल मिलता है। यों कहो न कि अपने पास का संपूर्ण बल काम मे लाकर और बल की ईश्वर से माँग करना यही प्रार्थना का मतलब है।

प्रार्थना मे दैववाद और प्रयत्नवाद का समन्वय है। दैव-वाद मे पुरुषार्थ को अवकाश नहीं है, इससे यह बावला है। प्रयत्नवाद में निरहंकार वृत्ति नहीं है इससे वह घमडी है। फलत: दोनो ग्रहण नही किये जा सकते। किन्तु दोनो को छोड़ा भी नहीं जा सक्ता। कारण दैववाद मे जो नम्रता है वह जरूरी है। प्रयत्नवाद मे जो पराक्रम है वह भी आवश्यक है। प्रार्थना इनका मेल साधती है। 'मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साह-समन्वित:' गीता मे सात्त्विक कर्ता का यह जो लक्षण कहा गया है उसमे प्रार्थना का रहस्य है। प्रार्थना मानी अहंकार-रहित प्रयत्न। सारांश, 'मुझे असत्य मे से सत्य में ले जा' इस प्रार्थना का संपूर्ण अर्थ होगा कि 'मैं असत्य में से सत्य की ओर जाने

का अहंकार छोड़कर उत्साहपूर्वक सतत प्रयत्न करूँगा।' यह अर्थ ध्यान मे रखकर हमें रोज प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये कि—

हे प्रभो, तू मुझे असत्य मे से सत्य में ले जा। अंधकार मे से प्रकाश में ले जा। मृत्यु मे से अमृत में ले जा।

## अभ्यास के लिये

१—शिव स्वरूप से क्या तात्पर्य समझते हो?

२—प्रमाणित करो कि प्रार्थना में दैववाद और प्रयत्नवाद का समन्वय है?

३—मनुष्य ईश्वर की प्रार्थना क्यों करता है?

—:०:—

# २—चारु चरित्र

[ लेखक—पं० बालकृष्ण भट्ट ]

हिंदी-गद्य-निर्माताओ मे प० बालकृष्ण भट्ट का स्थान विशेष महत्व का है। आपका जन्म प्रयाग मे स० १६०१ वि० मे हुआ और जीवन भर हिंदी की सेवा कर सं० १६७१ वि० में परलोक सिधारे। आपको हिंदी उर्दू, फारसी, और अगरेजी का अच्छा ज्ञान था।

प्रारंभ मे आप जमुना-मिशन-स्कूल और कायस्थ पाठशाला मे शिक्षक का कार्य करते रहे। तत्पश्चात् आपका मुख्य व्यवसाय हिंदी-सेवा और साहित्य-निर्माण ही हो गया। प्रयाग से प्रकाशित होने वाली "हिंदी प्रदीप" का सुसम्पादन आपने कई वर्षों तक अनेक आर्थिक-संकट झेल कर भी किया और इस पत्र द्वारा आपने हिदी की प्रशंसनीय सेवा की।

भट्ट जी ने साधारण एव मननशील दोनो प्रकार के विषयो पर लेख लिखे हैं। साधारण विषयो ( जैसे आँख कान, नाक, बात-चीत आदि ) पर भी आपके लिखे हुए निबन्ध अत्यन्त विचारपूर्ण, रोचक एवं सप्राण हैं। गाम्भीर्य एवं हास्य का उनमे अच्छा सम्मिश्रण रहता है। भट्ट जी के विचार भाषा के सबध मे बड़े उदार थे। भाषा को व्यापक बनाने के लिए आपने हिन्दी के बोल-चाल के शब्दों के अतिरिक्त उर्दू और अग्रेजी के व्यावहारिक शब्द का भी निःसंकोच प्रयोग किया है। आपकी शैली मे व्यक्तित्व की छाप है। समसामयिक पं० प्रताप नारायण मिश्र की अपेक्षा आपकी भाषा अधिक शिष्ट, नागरिक, परिष्कृत और सजीव है। उसमे ग्रामीणता का दोष नही है। मुहावरों का भी सुंदर प्रयोग है। आपने कुछ भावात्मक निबंध भी लिखे हैं। हिन्दी मे गद्य काव्य के जन्मदाता भी आप ही हैं। निबंधों के अति-

रिक्त आपने कहानियाँ ( सौ अजान एक सुजान, नूतन ब्रह्मचारी ) नाटक, प्रहसन और उपन्यास भी लिखे हैं। आपके लेख-संग्रह 'साहित्य सुमन' और 'भट्ट निबन्धावली' के नाम से प्रकाशित हुए हैं। यह लेख आपकी 'साहित्य-सुमन' पुस्तक से उद्धृत किया गया है।

मनुष्य के जीवन का महत्व जैसा चारु-चरित्र से संपादित होता है वैसा धन, ऊँचे पद, ऊँचे दरजे की तालीम इत्यादि के द्वारा नहीं हो सकता। समाज में जैसा गौरव, जैसी प्रतिष्ठा या इज्जत, जैसा जोर लोगो के बीच मे शुद्ध चरित्र वाले का होता है, वैसा बड़े से बड़े धनी और ऊँचे से ऊँचे ओहदे वाले का कहाँ ? धनवान या विद्वान् को जो प्रतिष्ठा दी जाती है या सर्वसाधारण में जो यश या नामवरी उसकी होती है, उसकी स्पर्धा सबको होती है। कौन ऐसा होगा जो अपने वैभव, अपनी विद्या या योग्यता से औरों को अपने नीचे रखने की इच्छा न करता हो ? शान्ति के एक मात्र आधार चारु-चरित्र वाले मे यह अलबत्ता नहीं देखा जाता। वह यह कभी नहीं चाहता कि चरित्र के पैमाने में, अर्थात् चरित्र क्या है, इसकी नाप-जोख मे दूसरा हमारे आगे न बढ़ने पावे।

कार्य-कारण का बड़ा घनिष्ट संबंध है। इस सूत्र के अनुसार देश या जाति का एक-एक व्यक्ति संपूर्ण देश या जाति की सभ्यता-रूप कार्य का कारण है; अर्थात् जिस देश या जाति में एक-एक मनुष्य अलग-अलग अपने चरित्र के सुधार में लगे रहते हैं, वह समग्र देश का देश उन्नति की अंतिम सीमा तक पहुँच, सभ्यता का एक बहुत अच्छा नमूना बन जाता है। नीच से नीच कुल में पैदा हुआ हो, बहुत पढ़ा-लिखा भी न हो, बड़ा सुभीते वाला भी न हो, न किसी तरह की कोई असाधारण बात उसमें

हो; किंतु चरित्र की कसौटी मे यदि वह अच्छी तरह कस लिया गया है, तो उस आदरणीय मनुष्य का संभ्रम और आदर समाज मे कौन ऐसा कम्बख्त होगा, जो न करेगा, और ईर्ष्यावश उसके महत्व को मुक्तकण्ठ हो स्वीकार न करेगा? नीचे दरजे से ऊँचे को पहुँचने के लिये चरित्र की कसौटी से बढ़ कर और कोई दूसरा जरिया नहीं है। चरित्रवान् यद्यपि धीरे-धीरे बहुत देर मे ऊपर को उठता है, पर यह निश्चित है कि चरित्र-पालन मे जो सावधान है, वह एक-न-एक दिन अवश्य समाज का अगुवा मान लिया जायगा। हमारे यहाँ के गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि, भिन्न-भिन्न मत या संप्रदायो के चलाने वाले आचार्य, नबी, अम्बिया, औलिया आदि सब इसी क्रम पर आरूढ़ रह, लाखो करोड़ो मनुष्यो के 'गुरोर्गुरुः' देववत् माननीय-पूजनीय हुए, और कितने ही उनमे से ईश्वर के अंश और अवतार माने गए।

यो तो दियानतदारी, सत्य पर अटल विश्वास, शांति, कपट और कुटिलाई का अभाव आदि चरित्र-पालन के अनेक अंग है, किन्तु बुनियाद इन सब उत्तम गुणों की, जिस पर मनुष्य मे चारु-चरित्र का पवित्र विशाल मंदिर खड़ा हो सकता है, अपने सिद्धान्तो का दृढ़ और पक्का होना है। जो जितना ही अपने सिद्धांतो का दृढ़ और पक्का है, वह उतना ही चरित्र की पवित्रता मे श्रेष्ठ होगा। चरित्र की संपत्ति के लिए सिधाई तथा चित्त का अकुटिल भाव भी एक ऐसा बड़ा स्रोत है, जहाँ से विश्वास, अनुराग, दया, मृदुता, सहानुभूति के सरस प्रवाह की अनेक धाराएँ बहती है। इनमे से किसी एक धारा से नियम पूर्वक स्नान करने वाला मनुष्य भलमनसाहत, सभ्यता, आभिजात्य या कुलीनता तथा शिष्टता का नामूना बन जाता है। क्योंकि चतुराई विना चित्त की सिधाई के, ज्ञान या विद्या विना विवेक या

अनुष्ठान के, मनुष्य मे एक प्रकार की शक्ति अथवा योग्यता अवश्य है, पर यह योग्यता उसकी वैसे ही है जैसे गिरह काटने वालों मे जेब या गाँठ काट, रुपये निकाल लेने की योग्यता या चालाकी रहती है।

आत्मगौरव भी चरित्र का प्रधान अंग है। सुचरित्र-संपन्न नीचा काम करने मे सदा संकुचित रहता है। प्रतिक्षण उसे इसके लिए बड़ी चौकसी रखनी पड़ती है कि कही ऐसा काम न बन पड़े कि प्रतिष्ठा मे हानि हो। उसका एक-एक काम और एक-एक शब्द सभ्य-समाज में नेकचलनी के सूत्र के समान प्रमाण में लिया जाता है। जिसके लिए उसने 'हाँ' कहा, फिर उसी के लिए उससे 'नही' कहलाना मनुष्य-मात्र की शक्ति के बाहर है। उत्कोच या किसी तरह लालच दिखलाकर उसके उसूल को बदलवा देना या दृढ़ सिद्धांतों से उसको अलग करना वैसा ही है, जैसा प्रकृति के नियमो का बदल देना। यह कुछ अत्यंत आवश्यक नहीं है कि जो बड़े धनी है या किसी बड़े ऊँचे ओहदे पर हैं, वे ही सच्ची शराफत या चोखी से चोखी सज्जनता अथवा नेकचलनी के सूत्र (Standard) हो अपितु गरीब तथा छोटा आदमी भी सज्जनता की कसौटी मे अधिकतर चोखा और खरा निकल सकता है। किसी ने अच्छा कहा—

"अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्ततस्तु हतो हतः।"

अर्थात्—धन पास न होने से गरीब गरीब नहीं है, वरन् जो सद्वृत्त नेकचलनी से रहित है, वही गरीब है। धनी सब कुछ अपने पास रख कर भी सब भाँति हीन है; पर निर्धनी पास कुछ न रख कर भी यदि सद्वृत्त है, तो सब भाँति भरा-पूरा है। उसे भय और नैराश्य कहीं से नहीं है। वही सद्वृत्त-विहीन वित्तवान को पग-पग में भय है। उसका भविष्य इतना धुंधला है कि जिस

का धुँधलापन दूर करने के लिए कहीं आशा की चमक का नाम नही है। दैववश जिसका सब कुछ नष्ट हो गया, पर धैर्य, चित्त की प्रसन्नता, आशा, धर्म पर दृढ़ता, आत्मगौरव और सत्य पर अटल विश्वास बना है, उसका मानो सब बना है। कहीं पर किसी अंश मे वह दरिद्र नही कहा जा सकता।

एक बुद्धिमान ने इन बातो को पवित्र चरित्र का मुख्य अंग निश्चय किया है—लंपटता अर्थात् छल-कपट का न होना, रुपये-पैसे के लेन-देन मे सफाई, बात का धनी और अपने वादे का सच्चा होना, आश्रितो पर दया, मेहनत से न हटना, अपने निज पौरुष और परिश्रम पर भरोसा रखना, अविकत्थन अर्थात् अपने को बढ़ा कर न कहना—इनमे से एक-एक गुण ऐसे है, जिन पर किताब पर किताब लिखी जा सकती है। चारु-चरित्र का एक संक्षेप विवरण हमने कह सुनाया। जिस भाग्यवान मे चरित्र के पूर्ण अंग है, उसका क्या कहना! वह तो मनुष्य के तन मे साक्षात् देवता या जीवन्मुक्त कोई योगी है। जिन बातो से हमारे मे चरित्र आता है, उसकी दो एक बात भी जिसमें है, वह धन्य और प्रशंसा के योग्य है। हमारे नवयुवको को चरित्र-पालन से विशेष प्रवणचित्त होना चाहिये। ऊँचे दरजे की शिक्षा बिना चरित्र के सर्वथा निरर्थक है। चरित्र-संपन्न साधारण शिक्षा रख कर जितना उपकार देश या जाति का कर सकता है उतना सुशिक्षित, पर चरित्र का छूछा नही कर सकता।

## अभ्यास के लिये

१—चारु-चरित्र का क्या अर्थ है और उसका मनुष्य जीवन में क्या महत्व है ?

२—चरित्र पालन के कौन-कौन प्रधान अंग हैं ?

३—'धनी सब कुछ अपने पास रखकर भी सब भाँति हीन है, पर निर्धनी पास कुछ न रखकर भी यदि सद्वृत्त है; तो सब भाँति भरा पूरा है।' कैसे ?

४—'चरित्र सपन्न साधारण शिक्षा रखकर जितना उपकार देश या जाति का कर सकता है उतना सुशिक्षित, पर चरित्र का छूछा नहीं कर सकता।' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

५—प० बाल कृष्ण भट्ट की गद्य शैली पर अपने विचार प्रकट कीजिए और प्रताप नारायण मिश्र की शैली से उसकी तुलना कीजिए।

६—निम्नाकित शब्दों और मुहाविरों के अर्थ लिखिये और उन्हें वाक्यों से सयुक्त कीजिए—

सभ्रम। उत्क्रान्ति। जीवन्मुक्त। प्रवणचित्त। अविकत्थन। अगुआ मान लेना। मुक्त कण्ठ से स्वीकार करना। नमूना बन जाना।

---

# ३—वर्ष का नया दिन

[ लेखक—श्री सियारामशरण गुप्त ]

आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री मैथलीशरण गुप्त के अनुज हैं। आपका जन्म १८९५ ई० मे, झासी जिलातर्गत चिरगॉव मे हुआ। आपकी शिक्षा-दीक्षा विशेष रूप से घर पर ही सपन्न हुई। आप हिन्दी के अतिरिक्त बॅगला, सस्कृत, अँगरेजी, गुजराती और मराठी भी जानते हैं।

वर्तमान कवियो मे आपका प्रमुख स्थान है। आपकी अनुभूति बड़ी भावमय, सरस, और हृदय-स्पर्शी होती है। आप कवि के अतिरिक्ति कुशल लेखक और उपन्यासकार भी हैं। 'गोद' और 'नारी' उपन्यास लिखकर आपने उपन्यास-जगत मे एक नवीन भाव-धारा को जन्म दिय है।

आपकी भाषा सरल, सुबोध, और हृदय पर प्रभाव उत्पन्न करने वाली है। आपकी भाषा मे सस्कृत के तत्सम शब्द अधिक पाये जाते हैं; पर उर्दू के प्रचलित शब्दो से आपको घृणा नहीं है।

आपकी शैली भावात्मक है।

नए संवत् का पहला दिन चैत्र-शुक्ल १—१९९६ है। जो वर्ष कल तक था, वह आज नहीं रहा। रात के साथ अँधेरा रहते-रहते वह किसी ऐसे देश की यात्रा पर चला गया है, जहाँ से लोट नही सकता। कुछ ही घण्टे हुये हैं अभी, फिर भी किसी मोटर-गाड़ी या हवाई जहाज द्वारा भी उसका पीछा असंभव है। किसी तरह अब उसके लौटाने का उपाय नही रहा। जो जल धारा समुद्र से जा मिलती है, भले ही तट के पास हो, तब भी वह थल की नही रहती, उसका कुल गोत्र और नाम बदल जाता है।

थल को संतोष है। उसका जल समुद्र से जा मिला है, तब भी उसका भंडार रीत नहीं गया। वह उसी तरह बह रहा है, वह उसी तरह लहरा रहा है। क्षण-भर के लिये भी वह कुंठित नहीं दिखाई देता। उसमें पहले की तरह ही गति-नृत्य है। उसकी निरंतरता टूट नही गई। उसकी धारा कल्पधारा है। लेने वाले को वह निराश न करेगी। बराबर वह आनन्द-दान करती जा रही है।

जल-धारा जैसा ही समय-धारा का हाल है। दिन गए, रातें गईं; पखवारे बीते, महीने गत हुये। धीरे-धीरे अथवा जल्द-जल्द, एक ही चाल से, अब यह पूरा-का-पूरा बरस चला गया है। चला गया है, फिर भी जान नही पड़ता कि कुछ रुक गया हो। कुछ घण्टे पहले पिछला साल था, और अब यह अगला है। इन दोनों के बीच में विच्छेद का स्वर कहाँ खनक उठा था इसका पता नहीं चलता। रात और दिन की धूप-छाँह के एक ही अखंड वस्त्र में कहीं गाँठ, जोड़ या सीवन आ पड़ने का प्रसंग तक नहीं उठा।

समय जाता है, और समय आता है। बीच में छेव नहीं पड़ता। यह क्रम न जाने कब से चल रहा है। आगे और पीछे की ओर, जितना देखते हैं इसके सिवा और कुछ देखा और समझा नही जाता। कभी दिन और रात छोटे हुये, और कभी बड़े। यह ऐसी बात है कि कभी माप का गज छोटा है, और कभी बड़ा। मापी जाने वाली वस्तु इनमें छोटी या बड़ी नहीं होती। काल अनंत, अक्षय और अखंड है।

फिर भी हमें उसके खंड-खंड करने पड़ते हैं। फिर भी हमें उसकी सीमा बाँधनी पड़ती है। ऐसा किये बिना हमारा चलाया नहीं चलता। वैज्ञानिक कहता है, पदार्थ के अणु और परमाणु विच्छिन्न कर दो, तो उनमें से एक दुर्निवार शक्ति प्रकट होगी

पड़ेगी। काल के ये अणु और परमाणु अलग-अलग करके हम अपने जीवन मे नई गति, नई स्फूर्ति और नया बल पाना चाहते है। इसी के लिये यह वर्ष की कल्पना है।

एक ही चैत के हम दो टुकड़े कर देते है। आधे चैत से ही हमारा यह साल चला है। जिस आधे में अंधकार था, उसे छोड़ दिया है। छोड़ते हुये हमारे मन मे विषाद का, मोह का उदय नहीं हुआ। अब जिस अगले आधे में प्रकाश है, मधुर और शीतल चाँदनी है, उसे हम नए साल मे लेकर आगे बढ़ते हैं। आज प्रतिपदा है। आज चन्द्रमा की एक भी किरण हमे न मिलेगी। फिर भी आज ही हम यह वर्षोत्सव मनाने चले है। हम जानते हैं, इस अँधेरे के आगे ही प्रकाश प्रकट हो पड़ेगा। इसी श्रद्धा को लेकर हमने इस मधु-मास का खंडीकरण किया। आज का दिन अखंड को, अनन्त को अपरिमित को मुट्ठी मे लेकर देखने का है। अपने को तटस्थ करके काल से आज हमे यह कहना हे—ठहरो रुको तो; हथेली पर उठाकर आज हम तुम्हारी तौल करना चाहते है।

## अभ्यास के लिये

१—हिन्दुओ, मुसलमानों, और अग्रेजों के विश्वासानुसार वर्ष का नया दिन कब कब आरम्भ होता है ?

२—प्रमाणित करो कि जल धारा जैसा ही समय-धारा का भी हाल है।

३—वर्ष की नयी कल्पना किस लिये है ?

४—निम्नाकित शब्दों को वाक्यों में सयुक्त करो।

विच्छेद, विच्छिन्न, परमाणु, अपरिमित।

५—इस लेख में लेखक ने 'वर्ष का नया दिन' की ओट से किस भाव की ओर निर्देश किया है ?

—:०:—

# ४—भुवनेश्वर के प्राचीन मन्दिर

[लेखक—श्री त्रिलोकीनाथ मेहरोत्रा]

हिन्दी के उदीयमान लेखकों मे आपका भविष्य परमोज्ज्वल है। आपके विचारपूर्ण लेख सामयिक पत्र पत्रिकाओ मे प्रायः प्रकाशित होते रहते हैं। 'पूरा तत्त्व' की ओर आपकी विशेष अभिरुचि है; और आपके निबन्ध भी प्रायः इसी विषय से सम्बन्ध रखते हैं।

आपकी भाषा सरल और विषय के ही अनुरूप होती है। शैली में भाव व्यजना का गुण विशेष रूप से उपलब्ध रहता है।

उड़ीसा प्रात के पुरी जिले में कई अति प्राचीन स्थान हैं। श्री जगन्नाथपुरी तो मुख्य क्षेत्र है ही, पर उसके अतिरिक्त समुद्र-तट पर कोणार्क ( सूर्य मन्दिर ) तथा भुवनेश्वर ( शिव मन्दिर ) भी अत्यन्त प्राचीन स्थान हैं। प्रस्तुत लेख में भुवनेश्वर क्षेत्र का ही वर्णन है।

उत्तर प्रदेश के यात्रियो के लिए सब से सीधा रास्ता मुगलसराय-गया-कलकत्ता लाइन पर गोमो स्टेशन से पड़ता है। गोमो से एक गाड़ी सीधी टाटानगर तक जाती है। टाटानगर से खड्गपुर और वहाँ से सीधी एक गाड़ी भुवनेश्वर होती हुई पुरी को जाती है।

रेलवे स्टेशन से भुवनेश्वर नगर लगभग तीन मील पड़ता है। सवारी के नाम पर यहाँ अधिकतर बैलगाड़ी ही मिलती है। मार्ग सुन्दर है और उतार होने के कारण बैल (जो इस तरफ बहुत छोटे होते हैं) तेजी से चलकर शीघ्र ही पहुँचा देते हैं। नगर में प्रवेश करते ही "विन्दु सरोवर" पड़ता है, जो यहाँ का एक प्रसिद्ध तीर्थ-

स्थान है। कहते है प्राचीन काल में इस सरोवर मे भारत के संपूर्ण तीर्थों का जल लाकर डाला गया था। यह सरोवर १३०० फीट लम्बा और ७०० फीट चौड़ा है। लगभग दो पुरसा जल इसमे सदा रहता है। इसी के तट पर दो बड़े-बड़े धर्मशाले बने है, जो काफी साफ-सुथरे है।

भुवनेश्वर पहले उत्कल प्रदेश की राजधानी थी और जल-वायु की उत्तमता के कारण आजकल फिर से प्रात की राजधानी होने जा रही है। यहाँ पर एक एरोड्रोम (हवाई अड्डा) भी है। प्राचीन काल मे इस प्रदेश मे बौद्धो का काफी जोर था। इन बौद्धो को भगा कर केशरी राजाओ ने ४४ पीढ़ियो तक ६७० वर्ष राज्य किया था। चौथी शताब्दी के उत्तर भाग से लेकर ग्यारहवी शताब्दी के पूर्व भाग तक इन केशरी राजाओं का प्रभुत्त्व इस देश पर था—ऐसा श्री जगन्नाथ जी के मंदिर मे प्रति दिन लिखी जाने वाली "माडल पंजी" नामक दिनचर्य्या से ज्ञात होता है। ये केशरी राजा शैव थे और इनका चिह्न "केशरी" अर्थात् सिह था। इसके उपरांत दक्षिणात्य गांग वंश के वैष्णव राजाओ का उत्कल पर अधिकार हुआ। केशरी वंश के सर्वप्रथम राजा ययाति केशरी के समय मे हिंदू धर्म के पुनरुद्धार की एक लहर सी आ गई। राजधानी भुनेश्वर ही थी और चूँकि ये राजा लोग शैव थे अतः उसी समय से इस स्थान पर शिव मदिरो की स्थापना प्रारंभ हुई। कहा जाता है कि किसी समय यहाँ सात हजार मन्दिर थे। इस समय भी यहाँ पर लगभग पांच सौ मदिर तो होगे ही। इनमे ईसा की पांचवीं सदी से लेकर ग्यारहवी सदी तक के मंदिर विद्यमान है। काशी को छोड़ कर भारत मे शायद ही कोई स्थान होगा, जहाँ इतने अधिक देवमंदिर एक साथ विद्यमान हो। इन मंदिरो मे मुख्य

मंदिर श्री लिंगराज का है जिसे ललाटेंदु केशरी (६१७—६५७ ई०) ने बनवाया था। इसके अतिरिक्त सात-आठ और मंदिर भी ऐसे हैं जो शिल्प-कला की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

उड़ीसा के मंदिरों की बनावट अन्य स्थानों के मंदिरों से सर्वथा भिन्न है। मुख्य मंदिर एक विशाल भवन होता है, जिसे 'विमान' कहते हैं। इसी में मुख्य देवता की प्रतिमा होती है। 'विमान' से लगा हुआ और उसके सामने एक चतुष्कोण भवन होता है, जिसे 'जगमोहन' कहते हैं। दर्शनार्थी इसी जगमोहन में एकत्रित होते हैं और वहीं से भीतर जाकर मुख्य देवता का दर्शन करते हैं। 'जगमोहन' के आगे "मंदिर" होता है जहाँ नृत्य, भजन और कीर्तन इत्यादि होते हैं। उसके आगे एक "भोग-मंदिर" होता है जहाँ भगवान का भोग लगाया जाता है।

## लिंगराज मंदिर

भुवनेश्वर के लिंगराज मंदिर के विमान का शिखर १८० फीट ऊँचा है। यद्यपि वह तंजोर के सुप्रसिद्ध वृहदीश्वर-मंदिर से कुछ कम ऊँचा है पर शिल्पकारी की दृष्टि से उससे किसी प्रकार भी कम नहीं है। यहाँ के मंदिरों में भगवान का भोग (दाल, भात और तरकारी) दिन में कई बार लगता है और इनके लिये प्रचुर धन जागीर रूप में लगा हुआ है जिसके प्रबंध के लिये एक सरकारी कमेटी नियुक्त है। कमेटी का प्रबंध विशेष संतोषजनक नहीं कहा जाता। जिस प्रकार पुरी क्षेत्र में भोजनादिक के विषय में कोई विचार नहीं रखा जाता, वैसी ही अवस्था भुवनेश्वर में भी है। इस ओर के ब्राह्मण भी उत्तरी भारत के ब्राह्मणों से विशेषरूप से भिन्न हैं। वे अपने को कान्यकुब्ज वाजपेयी ब्राह्मण कहते हैं। प्राचीन काल में कोई भी ब्राह्मण उत्कल प्रदेश में जाना नहीं पसंद करता था

और जो यहाँ अर्थ के लोभ से आए भी, उन्होने यहीं विवाह इत्यादि प्रारम्भ कर दिया। कर्म की दृष्टि से इधर बहुत कम शुद्ध ब्राह्मण मिलेगे।

भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर मे केवल पत्थर पर पत्थर रख कर विना टांका लगाए इस विशाल मन्दिर की सृष्टि हुई थी। कालांतर मे जीर्णोद्धार की आवश्यकता प्रतीत हुई, अतः सरकार ने एक लाख रुपया स्वयं देकर और दो लाख चंदा करके, कुछ समय हुआ, इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया है। श्री भुवनेश्वर की अनगढ़ मूर्ति है जिसमे ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनो का ध्यान करके पूजा की जाती है। भगवान की चल-मूर्ति को नौका पर बैठाकर उत्सवो के अवसर पर 'विदु सरोवर' मे जल-विहार कराया जाता है और तदुपरांत रथ पर बिठा कर घुमाया जाता है। मन्दिर की बनावट अनोखी ही है। शायद ही कोई टुकड़ा पत्थर का ऐसा मिले, जिस पर बेल-बूटे, पशु-पक्षी और नर-नारियो की बड़ी तथा बारीक मूर्तियाँ न बनी हो। मन्दिर के बाहर तीन छोटे-छोटे मन्दिर गणेश, कार्त्तिकेय तथा गौरी के है। ये मन्दिर मुख्य विमान से मिले हुए है। गौरी की प्रतिमा अत्यंत सुन्दर काले पत्थर की बनी हुई है और अनेक आभूषणो से सुसज्जित है। कहते है कि कलकत्ता के अनेक भूषणकार इस मूर्ति मे दिखलाए गए आभूषणो के नमूने के आभूषण अब भी बनाते है। मूर्तियो मे हाथी, घोड़े, हिरन, सिह आदि की जो मूर्तियाँ बनी है उनमे सजीवता का भाव विशेषरूप से उल्लेख्य है। इनके अतिरिक्त राजभवन की व्यवस्था संबंधी तथा राजा और रानी के अलग-अलग दरबारो के दृश्य विशेष रूप से दर्शनीय है। इधर के मन्दिरो मे मुख्य मन्दिर की आकृति छोटे रूप मे दिखाने की प्रथा भी प्रचलित है— वह भी यहाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य है। मुख्य मन्दिर के बाहर

एक पंक्ति मे चार-चार मन्दिर है और ऊपर एक इस प्रकार के बने हैं, जैसा कि मुख्य है। मंदिर के चारों ओर 'गज सिंह' नाम के सिंह उभड़े हुए बने है। सिंह केशरी राजाओ का चिह्न था, उसी प्रकार जैसे बौद्ध धर्म का चिह्न हाथी माना जाता है। अतः मंदिर मे स्थान-स्थान पर सिंहो द्वारा हाथी की पराजय दिखलाई गई है। इस मंदिर मे अनेक मूर्तियाँ अश्लील कही जा सकती है और इनकी स्थिति से अनभिज्ञ लोगो ने उस काल के राजाओ तथा संगतराशो के विषय में अनेक निर्मूल बातें लिख डाली है। कदाचित् ऐसी अश्लील मूर्तियाँ मंदिर की सुन्दरता पर लोगो की कुदृष्टि, वात, बिजली गिरना इत्यादि आपत्तियो से मंदिर की सुरक्षा के हेतु बनाई जाती थी।

इस प्रकार की अश्लील मूर्तियाँ जगन्नाथ मंदिर मे कोणार्क के ध्वस्त सूर्य मंदिर मे, खजुराहो के चदेल मंदिरो मे, मदुरा के मन्दिरो मे, खानदेश के बलसाने वाले शिव मन्दिर मे, नासिक जिले के शिलर वाले मन्दिर में, यलोरा के सुप्रसिद्ध कैलाश गुफा मन्दिर में, साँची के ध्वस्त बौद्ध मन्दिर की चौखट मे, खजुराहो के जैन मन्दिरो की चोखट मे, आबू के जैन मन्दिरो में तथा नेपाल के मन्दिरों में भी पाई जाती है। बौद्ध धर्म के प्रभाव से, वाममार्गीय उपासना के प्रचार से अथवा अन्य विशिष्ट कारणों से ये मूर्तियाँ विशेष अश्लील रूप में इस प्रांत में बनी हैं। दक्षिण के मन्दिरों मे भी इनका अभाव नहीं है पर वहाँ ये यथासाध्य कम अश्लील हैं। यहां से समुद्र का तट लगभग २५ मील दूर है और समुद्र की खारी वायु के कारण अनेकानेक मूर्तियाँ खराब हो गयी हैं। बेलबूटों की बनावट इस मन्दिर में विशेष रूप से देखने योग्य है। लिंगराज मन्दिर के अहाते में ६५ और मन्दिर भी हैं। उनमें पार्वती का मन्दिर

बड़ा ही सुन्दर है। इन सब मन्दिरो के चारो ओर एक २० फीट ऊँची तथा ७ फीट मोटी दीवार बनी है। कुछ लोग इस लिंगराज के मन्दिर को केशरी वश के मूल पुरुष ययाति केशरी का बनवाया हुआ कहते है।

लिंगराज के मन्दिर के अतिरिक्त यहाँ सात आठ और मन्दिर भी दर्शनीय है। ये मन्दिर मील दो मील के अन्दर ही विद्यमान है। इनमे "भास्करेश्वर का मन्दिर" सर्वप्रथम देखने योग्य है। इस मन्दिर के चौखट के ऊपर नवग्रहो की मूर्ति बनी हुई है, जैसा उड़ीसा के सब मन्दिरो मे मिलेगा। द्वारपालों के स्थान पर नाग मूर्तियाँ बनी है जिनमे नीचे का धड़ नाग का और ऊपर का मनुष्य का है। अधिकांश मूर्तियाँ नाग कन्याओ की है। मन्दिर के भीतर मध्य भारत के चन्देल मन्दिरो के समान दो बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ बनी है, जिनके पत्थर के जँगले हवा के आने जाने मे विशेष सहायक होते है, तथा मन्दिर के भीतर सूर्य की प्रखर किरणे नही पहुँचने पाती, जिसके कारण भीतर दर्शको पर विस्मयकारी धार्मिक प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है। यह मन्दिर अत्यन्त एकान्त स्थान मे बना है और बाहर की मूर्तियो के देखने से पाँचवी सदी का बना समझा जाता है। अन्य शिव मन्दिरो के समान इसमे भी बाहर गौरी, गणेश तथा कार्तिकेय की मूर्तियाँ बनी है। मन्दिर के चारो ओर एक दीवार बनी है।

इसके बाद "मेघेश्वर का मन्दिर" पड़ता है, जिसकी बनावट बहुत सादी है। कहा जाता है कि इसको अनियंग भीम के साले ने ११९३-९८ के बीच मे बनवाया था। मन्दिर मे बहुत कम मूर्तियाँ बनी हैं। मन्दिर दो मंजिला है और इसके भीतर विशाल शिवलिग की पूजा दोनो खंडो से की जा सकती है।

## ब्रह्मेश्वर का मन्दिर

"ब्रह्मेश्वर का मन्दिर" एक रमणीक गाँव की बस्ती के अन्त

में बना है। यह कुछ ऊँचाई पर बना हुआ है। इनके चारों कोनों पर चार बड़े-बड़े मन्दिर बने हैं और इनके बाहर एक दीवार घिरी हुई है। मन्दिर के सामने सुन्दर जगमोहन भी बना है। नवग्रह पटल, नाग कन्याएं और विशेष रूप की खिड़कियों के अतिरिक्त भीतर दो पंक्तियाँ लड़ाई, जंगल तथा पशुओं के दृश्यों से भरी हुई बनी हैं। इस मन्दिर की दशा और मन्दिरों से बहुत अच्छी है। बाहर की मूर्तियाँ भी बहुत सुन्दर हैं। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य का अनुमान है कि इस मन्दिर को उद्योग केशरी नामक राजा ने ६वीं शताब्दी के अंत में बनवाया था। इस राजा का एक और लेख भी खण्डगिरि की एक गुफा में मिला है। कलिंग विजय के बाद सम्राट अशोक ने एक तोपाली नामक नगर भुवनेश्वर के समीप बसाया था, और वहाँ एक राजपुत्र के रहने का स्थान था। आज कल शिशुपाल गढ़ नामक स्थान पर तोपाली के ध्वंसावशेषों की खुदाई हो रही हैं। यहाँ पर ईंटों की चारों तरफ बड़ी ऊँची दीवार तथा बड़े-बड़े फाटक मिले हैं। प्राचीन समय का एक १६ खंभों का समूह भी प्राप्त हुआ है। इसी शिशुपाल गढ़ की दीवार का एक कोना इस ब्रह्मेश्वर मन्दिर के पास तक आया है।

"राजा रानी मन्दिर" इस समय मूर्ति से खाली है, परन्तु इसके बाहर की मूर्तियाँ अत्यन्त कलापूर्ण हैं। इस मन्दिर में विशेषतः बेल-बूटों और भावपूर्ण छोटी मूर्तियों का दृश्य अत्यन्त सुन्दर हैं। स्थान-स्थान पर नागकन्यायें भी बनी हैं और अग्निदेव की मूर्तियाँ भी। अश्लील मूर्तियाँ यहाँ भी विद्यमान हैं। इस मन्दिर के नाम के विषय में कहा जाता है कि राजा रानी एक पीले पत्थर का नाम है, जिसका यह मन्दिर बना है। मन्दिर में कहीं भी चूने का प्रयोग नहीं किया गया है। कहा जाता है कि इस मन्दिर की अनेक मूर्तियाँ सुन्दरता के कारण लोग चुरा ले गए।

## सबसे प्राचीन मन्दिर

"परशुरामेश्वर का मन्दिर" भुवनेश्वर के मन्दिरो मे सबसे प्राचीन कहा जाता है। इसके जगमोहन की बनावट भी अन्य मन्दिरो से भिन्न है। इसमे अभी हाल ही मे काफी मरम्मत हुई है। भीतर कोई मूर्ति नही है, परन्तु जगमोहन मे एक पुरुषाकार सुन्दर मूर्ति पड़ी है। संभव है कि मुख्य मन्दिर मे यही मूर्ति रही हो। अनुमान है कि यह मन्दिर ५ वी सदी मे बना था। इसके शिखर की बनावट अत्यन्त कलापूर्ण है। इसमे कोई भी भाग बेलबूटे अथवा मूर्तियो से खाली नही है। जगमोहन के पुनरुद्धार के सिलसिले मे मूर्तियाँ कुछ इधर की उधर लगा दी गई है। कही-कही नर्तकियो के नृत्यो के सुन्दर दृश्य बने है। इसका द्वार पश्चिम की ओर है, जैसा कि अन्य मन्दिरो मे नही पाया जाता। इसके अतिरिक्त इसमे केशरी राजाओ के चिह्न 'सिह' की खासी दुर्दशा दिखायी गई है। सिह जगह-जगह घातको के भालो से छिदा जाता दिखलाया गया है। अन्य मन्दिरो के समान इसमे भी गणेश, कार्तिकेय तथा गौरी की मूर्तियाँ बनी है। गणेश जी की सूँड़ देखने योग्य है जो दाढ़ी की तरह लटकती दिखलाई गयी है।

पास ही सिद्धारण्य नामक आम्रवाटिका मे "सिद्धेश्वर" "मुक्तेश्वर" तथा "केदारेश्वर" के मन्दिर स्थित है। सिद्धेश्वर का मन्दिर पहले पड़ता है और अच्छी दशा मे है। इसके जग-मोहन की बनावट बहुत ही सुन्दर है। इसका शिखर ४७ फीट ऊँचा है। सुगठ बनावट ही इस मन्दिर की विशेषता है। मन्दिर मे अधिक मूर्तियाँ नहीं हैं। इस मन्दिर से उतरते ही बाईं तरफ एक छोटी सी कोठरी मे तांडव नृत्य मुद्रा मे भगवान शिव की अष्टभुज मूर्ति है। इस नटराज मूर्ति की छवि द्रष्टव्य है और बड़े-बड़े लेखको ने ठीक ही इसकी इतनी प्रशंसा की है।

# सबसे सुन्दर मन्दिर

इसी के बगल में मुक्तेश्वर का मन्दिर है जो यहाँ के मन्दिरों में सबसे सुन्दर माना जाता है। शिखर इसका ३७ फीट ऊँचा है। इसकी मूर्तियों की बनावट अत्यन्त मनमोहक एवं कलापूर्ण है। कहा जाता है कि यदि यह मन्दिर संगमरमर का होता तो यह सुन्दरता एवं कला की दृष्टि से ताजमहल से भी बाजी मार ले जाता। इसका जगमोहन सिद्धेश्वर के जगमोहन से भी सुन्दर है। बाहर एक बड़ा आकर्षक तथा सुन्दर तोरण अथवा प्रवेश द्वारा बना है जिसमें बेल-बूटे, छोटी मूर्तियों तथा मालाओं का काम विशेष रूप से दर्शनीय है। भुवनेश्वर के किसी और मन्दिर में ऐसा सुन्दर तोरण नहीं बना है। जगह-जगह नाचती और बाजा बजाती नारियाँ दिखलायी गयी हैं। कई स्थानों पर जटाधारी साधु भी दिखलाए गए हैं। हाथियों और सिंहों की लड़ाई, बन्दरों के अनेक खेल आदि भी दिखलाए गए हैं। हाथी पर सवार एक स्त्री तलवार से एक भीमकाय पुरुष पर आक्रमण करती दिखलायी गयी है। मन्दिर के चारों ओर बनी हुई सुन्दर मूर्तियाँ प्रायः अक्षुण्ण हैं। इनमें पशुओं के जीवन का सफल चित्रण है। जगमोहन की छत पर एक सुन्दर अष्टदल कमल बना है। इसके प्रत्येक पंखुड़ियों पर एक-एक सुन्दर देवमूर्ति बनी है। छत पर इसके अतिरिक्त अन्य मूर्तियाँ भी बनी हैं। जगमोहन की खिड़कियाँ विशेष सुन्दर हैं। यह मन्दिर छठीं सदी का बना हुआ कहा जाता । मन्दिर के चारों ओर एक सुन्दर वेष्टनी बनी है, जो बहुत कलापूर्ण है। इसके प्रत्येक कोष्ठ के ऊपर एक-एक उभाड़दार मुखाकृति बनी है और नीचे के कोष्ठ में चक्र समान आकृतियाँ बनी हैं। कोई भी स्थान मूर्तियों से रिक्त नहीं है। जगमोहन

पर जो सिंह है वह भी विशेष सुन्दर है। मन्दिर के पीछे ही एक तालाब है जिसमे मैगनेशियम युक्त पानी आता है।

केदारेश्वर का मन्दिर कई मन्दिरो के मध्य मे पड़ता है और मुक्तेश्वर के पास है। इसके सामने गौरी देवी का एक मन्दिर है जिसमे देवी की बहुत सुन्दर मूर्ति स्थापित है। केदारेश्वर की मूर्ति काशी के केदारेश्वर के समान ही अनगढ़ है। मन्दिर का शिखर ४१ फीट ऊँचा है। इसका निर्माण काल छठी शताब्दी माना जाता है। मन्दिर के समीप ही सुप्रसिद्ध "दूध कुण्ड" है जिसका जल अत्यन्त पाचक और स्वादिष्ट है। पुरी आदि स्थानों मे तो यह जल स्वास्थ्य के लिये बिकता भी है। इसी कारण यहाँ बंगालियो की एक छोटी सी बस्ती भी बस गई है। इस तरफ ऐसे और भी कुण्ड है, जिनके नाम गौरीकुण्ड केदारकुण्ड, सिद्धकुण्ड, और राम कुण्ड है। यहाँ एक डाक बंगला भी इसी स्थान पर बना है। दूध कुंड का जल केदार-मूर्ति पर से बहकर गौरी कुंड मे जाता है।

## अनंत वासुदेव

एक और मन्दिर है जिसको "अनंत वासुदेव" का मन्दिर कहते है। यह विन्दु सरोवर के तट पर ही है और इस स्थान का अकेला विष्णु मन्दिर है। इसके भीतर दीवार पर दो बड़े-बड़े शिला लेख लगे है जिनकी भाषा कुछ संस्कृत सी प्रतीत होती है। इस मन्दिर मे काफी मरम्मत हाल ही मे हुई है और इसकी बनावट जगन्नाथ जी के मन्दिर के समान ही है। मन्दिर के बाहर विष्णु के वामन, बाराह और नरसिंह रूप बने है। इसके पीछे भी एक छोटा सा मन्दिर बना है। स्थान-स्थान पर गज, लक्ष्मी, सूर्य, हंस, सिंह आदि की सुन्दर मूर्तियाँ बनी है। मन्दिर दूर से देखने मे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है।

इन मन्दिरो के अतिरिक्त "वेताल डेउल" नामक भी एक

मन्दिर है जिसकी बनावट दक्षिण के मन्दिरों तथा ग्वालियर के 'तेली की मन्दिर' से मिलती है। ऊपर का शिखर ढोल सा लंबा है और इसमे तीन कँगूरे बने हैं। कँगूरो के नीचे सुन्दर आलों मे नटराज तथा विष्णु की मूर्तियाँ बनी है। जगमोहन के चारों कोनों पर चार छोटे मन्दिर बने हैं।

यों तो भुवनेश्वर के चारो ही ओर मन्दिर बने है, परन्तु उपरोक्त मन्दिर ही विशेष दर्शनीय है। भुवनेश्वर से कुछ ही दूर पर अशोक कालीन धौली का शिलालेख अश्वत्थामा पर्वत पर विद्यमान है। लगभग सात मील की दूरी पर उदयगिरि और खंडगिरि की सुप्रसिद्ध गुफाएँ भी है। पुरातत्व की दृष्टि से भुवनेश्वर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है और आशा है कि प्रांत का राजनैतिक केन्द्र बन जाने से यह स्थान और अधिक संख्या मे दर्शकों तथा यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा।

## अभ्यास के लिये

१—भुवनेश्वर कहाँ है, और क्यो प्रसिद्ध है ?

२—भुवनेश्वर की प्राचीनता के सबंध में तुम्हे क्या ज्ञात है ?

३—भुवनेश्वर के मंदिरो का वर्णन अपनी भाषा में करो।

४—एक यात्रा-कहानी लिखो, जिसमे भुवनेश्वर के मदिरो का चित्रण हो।

५—भुवनेश्वर के मदिरो को देख या उसके वर्णन को पढ़ कर तुम भारत की प्राचीन वास्तु कला के सबंध मे अपना मत प्रकट करो।

—:०:—

## ५—सज्जनता का दंड

[ लेखक—श्री प्रेमचद ]

उपन्यास सम्राट स्वर्गीय प्रेमचद का जन्म बनारस जिलातर्गत पॉडेपुर नामक ग्राम मे स० १६३७ मे हुआ। बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आप कुछ दिनो तक सब डिप्टी इंसपेक्टर तथा नार्मल स्कूल मे अध्यापक का कार्य करते रहे। तत्पश्चात् स्वतत्र रूप से साहित्य-सेवा मे तत्पर हो गये। साहित्य-सेवा करते हुये आपको बराबर आर्थिक सकटो का सामना करना पडा। आर्थिक दृष्टिकोण से आपने कुछ दिनो तक फिल्म कम्पनियों मे कहानी लेखक का भी कार्य किया। जीवन के अंतिम दिनों मे आपने काशी से 'हंस' और 'जागरण' नामक पत्र निकाला, तथा प्रकाशन सस्था भी खोली। आपके निधन से जो स्थान रिक्त हुआ था, वह अभी तक पूर्ण नही हुआ।

आपने मौलिक उपन्यास तथा कहानियॉ लिख कर हिंदी के मस्तक को उच्च तथा उज्ज्वल किया है। आप ही ने सर्वप्रथम हिंदी कथा-साहित्य मे मनोवैज्ञानिक ढग से चरित्र चित्रण किया। आपकी कहानी तथा उपन्यासो के सभी अवयव प्रौढ़ तथा सुसगठित हैं। आप अन्तः प्रकृति के विश्लेषण करने मे बडे पटु थे। आपकी कला यथार्थवाद को लेकर चली है और इसमे कल्पना तथा चमत्कार का अश बहुत कम रहता है। दीन, दलित तथा निर्धन आपकी दया के पात्र हैं और इनका वर्णन करते समय आपकी लेखनी में अधिक शक्ति आ जाती थी। आप नाटककार भी थे।

आपकी भाषा बोलचाल की मुहाविरेदार, रोचक और प्रभावशाली है। आपकी भाषा मे सभी भाषाओ के प्रचलित शब्द मिलते हैं। शैली बडी भाव व्यजक है, जिस पर उर्दू की स्पष्ट छाप है।

आपकी पुस्तकों में प्रेमद्वादशी, सप्त सुमन, प्रेमपूर्णिमा, सेवासदन, ग़बन, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, गोदान, और कर्बला इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं।

( १ )

साधारण मनुष्यों की तरह शाहजहाँपुर के डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर सरदार शिवसिंह में भी बुराइयाँ और भलाइयाँ दोनों ही वर्तमान थीं। भलाई यह थी कि उनके यहाँ न्याय और दया में कोई अंतर न था। बुराई यह थी कि वे सर्वथा निर्लोभ और निःस्वार्थ थे। भलाई ने मातहतों को निडर और आलसी बना दिया था; बुराई के कारण उस विभाग के सभी अधिकारी वर्ग उनके जानी दुश्मन बन गए थे।

प्रातःकाल था, वे किसी पुल की निगरानी के लिए तैयार खड़े थे, मगर साईस अभी तक मीठी नींद सो रहा था। रात को उससे अच्छी तरह बता दिया गया था कि पौ फटने के पहले गाड़ी तैयार कर लेना। लेकिन सुबह भी हुई, सूर्य भगवान ने दर्शन भी दिए; शीतल किरणों में गरमी भी आई—पर साईस की नींद अभी तक नहीं टूटी।

सरदार साहब खड़े-खड़े थक कर एक कुर्सी पर बैठ गए। साईस तो किसी तरह जागा, परंतु अर्दली के चपरासियों का पता नहीं। जो महाशय डाक लेने गए थे, वे एक ठाकुरद्वारे में खड़े हुए चरणामृत की प्रतीक्षा कर रहे थे। जो ठेकेदार को बुलाने गए थे, वे बाबा रामदास की सेवा में बैठे गाँजे की दम लगा रहे थे।

धूप अधिक होती जाती थी। सरदार साहब झुंझला कर मकान में चले गए और अपनी पत्नी से बोले—"इतना दिन चढ़ आया। अभी तक एक चपरासी का भी पता नहीं, मेरा तो इनके मारे नाक में दम आ गया है।"

पत्नी ने दीवार की ओर देखकर दीवार से कहा—"यह सब उन्हें सिर चढ़ाने का फल है।"

सरदार साहब चिढ़कर बोले—"तो क्या करूँ ? उन्हें फाँसी दे दूँ।"

( २ )

सरदार साहब के पास मोटरकार का कहना ही क्या, कोई फ़िटिन भी न थी। वे अपने इक्के ही से प्रसन्न थे, जिसे उनके नौकर-चाकर अपनी भाषा मे उड़नखटोला कहा करते थे, शहर के लोग उसे इतना आदर-सूचक नाम न देकर छकड़ा कहना ही उचित समझते थे। इसी तरह सरदार साहब अन्य व्यवहारो मे भी बड़े मितव्ययी थे। उनके दो भाई इलाहाबाद मे पढ़ते थे, उनकी विधवा माता बनारस मे रहती थीं, और एक विधवा बहिन भी उन्ही पर अवलंबित थी। इसके सिवा कई गरीब लड़को को वे छात्रवृत्तियाँ भी देते थे। इन्ही कारणो से वे सदा धनहीन रहते थे, यहाँ तक कि उनके कपड़ो पर भी आर्थिक दशा के चिह्न दिखायी देते थे।

लेकिन यह सब कष्ट सहने पर भी वे लोभ को अपने पास नफटकने देते थे। जिन लोगो पर उनका स्नेह था, वे उनकी सज्जनता को सराहते थे और उन्हे देवता समझते थे। उनकी सज्जनता से उन्हे कोई हानि न होती थी, लेकिन जिन लोगो से उनके व्यवसायिक संबंध थे, वे उनके सद्भावो के ग्राहक न थे, क्योकि उन्हे हानि होती थी, यहाँ तक कि उन्हे अपनी सहधर्मिणी से भी कभी कभी अप्रिय बाते सुननी पड़ती थी।

एक दिन वे जब दफ़्तर से आए तो उनकी पत्नी ने स्नेहपूर्ण शब्दो मे कहा—"तुम्हारी यह सज्जनता किस काम की, जब कि सारा संसार तुमको बुरा कह रहा है।"

सरदार ने दृढ़ता से जवाब दिया—"संसार जो चाहे कहे; परमात्मा तो देखता है।"

रामा ने यह जवाब पहले ही सोच लिया था। वह वाली—"मै तुमसे विवाद तो करती नही। मगर जरा अपने दिल में विचार करके देखिए कि आपकी इस सचाई का दूसरो पर क्या प्रभाव पड़ता है। आप तो अच्छा वेतन पाते है, अगर आप हाँथ न बढ़ाएँ तो आपका निर्वाह हो सकता है। सूखी रोटियाँ मिल ही जायँगी। मगर ये दस-दस पाँच-पाँच रुपए के चपरासी, मुहर्रिर, दफ्तरी बेचारे कैसे निर्वाह करे। उनके भी बाल-बच्चे हैं। उनके भी कुटुंब-परिवार है। शादी, गमी, तिथि-त्योंहार यह सब उनके साथ लगा हुआ है। भलमनसी का भेप बनाए बिना काम नही चलता। बताओ, उनका निर्वाह कैसे हो। अभी रामदीन चपरासी की घर वाली आई थी। रोते-रोते आँचल भीगता था। लड़की सयानी हो गई है। इसी वर्प उसका व्याह करना पड़ेगा। ब्राह्मण की जाति, हजारो का खर्च, बताओ उसके आँसू किसके सिर पड़ेंगे?"

ये सब बाते सच थीं। इससे सरदार साहब को इनकार न हो सकता था। उन्होंने स्वयं इस विपय में बहुत कुछ विचार किया था। यही कारण था कि वे अपने मातहतों के साथ बड़ी नरमी का व्यवहार करते थे। लेकिन सरलता का आत्मिक गौरव चाहे जो हो, उसका आर्थिक मोल बहुत कम है। वे बोले—"तुम्हारी बातें सब यथार्थ हैं, मगर मै विवश हूँ। अपने नियमों को कैसे तोड़ूँ। यदि मेरा बस चले तो मैं उन लोगों के वेतन बढ़ा दूँ। लेकिन यह नहीं हो सकता कि मैं स्वयं लूट मचाऊँ और उन्हें लूटने दूं।"

रामा ने व्यंग्य-पूर्ण शब्दों में कहा—"तो यह हत्या किस पर पड़ेगी।"

सरदार साहब ने तीखे हो कर उत्तर दिया—"यह हत्या उन लोगों पर पड़ेगी, जो अपनी हैसियत और आमदनी से

अधिक खर्च करना चाहते हैं। अर्दली बनकर क्यो वकील के लड़के से लड़की ब्याहने की ठानते है ? दफ्तरी को यदि टहलुवे की जरूरत हो तो पाप से कम नही। मेरे साईस की स्त्री अगर चॉदी की सिल गले में डालना चाहे तो उसकी मूर्खता है। इस झूठी बड़ाई का उत्तरदाता मै नहीं हो सकता।"

( ३ )

इंजीनियरो का ठेकेदारो से कुछ वैसा ही संबंध है जैसा मधु-मक्खियो का फूलो से है। अगर वे अपने नियत भाग से अधिक पाने की चेष्टा न करे तो उनसे किसी को शिकायत नही हो सकती। यह मधु-रस कमीशन कहलाता है। रिश्वत और कमीशन मे बड़ा अंतर है। रिश्वत लोक और परलोक दोनो ही का सर्व-नाश कर देती है। उसमें भय है, चोरी है, बदनामी है। मगर कमीशन एक मनोहर वाटिका है, जहॉ न मनुष्य का डर है, न परमात्मा का भय, यहॉ तक कि जहॉ आत्मा की छिपी हुई चुटकियो की भी गुजर नही है। और कहाँ तक कहे इसकी ओर बदनामी आँख भी नही उठा सकती। यह वह बलिदान है जो हत्या होते हुए भी धर्म का एक अंश है। ऐसी अवस्था में यदि सरदार शिवसिह अपने उज्जवल चरित्र को इस धब्बे से निर्मल रखते थे और उस पर अभिमान करते थे तो वे क्षमा के पात्र थे।

मार्च का महीना बीत रहा था। चीफ इंजीनियर साहब जिले मे मुआयना करने आ रहे थे। मगर अभी तक इमारतो का काम अपूर्ण था। सड़के खराब हो रही थी। ठेकेदारों ने मिट्टी और कंकड़ भी न जमा किया था।

सरदार साहब रोज ठेकेदारो को ताकीद करते थे, मगर इस का कुछ फल न होता था।

एक दिन उन्होंने सब को बुलाया। वे कहने लगे—"तुम लोग क्या यही चाहते हो कि मै इस जिले से बदनाम होकर जाऊँ।

मैंने तुम्हारे साथ कोई बुरा सलूक नहीं किया। मैं चाहता तो आप से काम छीन कर खुद करा लेता। मगर मैंने आपको हानि पहुँचाना उचित न समझा। उसकी मुझे यह सजा मिल रही है। खैर!"

ठेकेदार लोग यहाँ से चले तो बातें होने लगी।

बाबू गोपालदास बोले—"अब आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा।"

शहबाजखाँ ने कहा—"किसी तरह इसका जनाजा निकले तो यहाँ से।"

सेठ चुन्नीलाल ने फरमाया—इंजीनियर से मेरी जान पहचान है। मैं उनके साथ काम कर चुका हूँ। उन्हे खूब लथेडूँगा।"

इस पर बूढ़े हरिदास ने उपदेश दिया—"यारो स्वार्थ की बात और है। नहीं, सच तो यह है कि यह मनुष्य नहीं, देवता है। भला और नही तो साल भर में कमीशन के १० हजार तो होते होंगे। इतने रुपये को ठीकरे की तरह तुच्छ समझना क्या कोई साधारण बात है? एक हम हैं कि कौड़ियों के पीछे ईमान बेंचते फिरते हैं। जो सज्जन पुरुष हमसे एक पाई का रवादार न हो, सब प्रकार के कष्ट उठाकर भी जिसकी इच्छा डाँवाडोल न हो, उसके साथ हमको ऐसा नीच और कुटिल बरताव करना पड़ता है। इसे अभाग्य के सिवा और क्या समझें।"

शहबाजखाँ ने फरमाया—"हाँ इसमें तो कोई शक नहीं कि यह शख्स नेकी का फरिश्ता है।"

सेठ चुन्नीलाल ने गंभीरता से कहा—खाँ साहब! बात तो यही है, जो तुम कहते हो लेकिन किया क्या जाय, नेकनीयती से तो काम नहीं चलता। यह तो छल-कपट की दुनियाँ है।"

बाबू गोपालदास बी० ए० पास थे। वे गर्व के साथ बोले—"इन्हें जब इस तरह रहना था तो नौकरी करने की क्या जरूरत

थी ? यह कौन नहीं जानता कि नीयत को साफ रखना अच्छी बात है। मगर यह भी तो देखना चाहिए कि इसका दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ता है । हमको तो ऐसा आदमी चाहिए जो स्वयं खाय और हमे भी खिलाये । स्वयं हलुआ खाय, हमें रूखी रोटियाँ ही खिलाए। वह अगर एक रुपया कमीशन लेगा तो पाँच का फायदा करा देगा। इन महाशय के यहाँ क्या है ? इसीलिए आप जो चाहे कहे। मेरी तो कभी इनसे निभ ही नही सकती।"

शहबाजखाँ बोले—"हाँ, नेक और पाक-साफ रहना जरूर अच्छी चीज है। मगर ऐसी भी क्या नेकी, जो दूसरों की जान ही ले ले।"

बूढ़े हरिदास की बातो की जिन लोगों ने पुष्टि की थी वे सब गोपालदास की हाँ मे हाँ मिलाने लगे। निर्बल आत्माओं में सचाई का प्रकाश, जुगनू की चमक है।

( ४ )

सरदार साहब के एक पुत्री थी। उसका विवाह मेरठ के एक वकील के लड़के से ठहरा था। लड़का होनहार था। जाति-कुल मे ऊंचा था, सरदार साहब ने कई महीने की दौड़धूप में इस विवाह को तय किया था। और सब बातें हो चुकी थीं, केवल दहेज का निर्णय न हुआ था। आज वकील साहब का एक पत्र आया। उसमे इस बात का भी निश्चय कर दिया। मगर विश्वास, आशा, और वचन के बिलकुल प्रतिकूल! पहले वकील साहब ने एक जिले के इंजीनियर के साथ किसी प्रकार का ठहराव व्यर्थ समझा। बड़ी सस्ती उदारता प्रकट की। इस लज्जित और घृणित व्यवहार पर खूब आँसू बहाए। मगर जब ज्यादा पूछ-ताँछ पर सरदार साहब के धन-वैभव का भेद खुल गया तब दहेज का ठहराना आवश्यक हो गया।

सरदार साहब ने आशंकित हाथों से पत्र खोला। पाँच हजार रुपए से कम पर विवाह नही हो सकता। वकील साहब को बहुत खेद और लज्जा थी कि वे इस विषय मे स्पष्ट होने पर मजबूर किये गए मगर वे अपने खानदान के कई बूढ़े, खुर्राट, विचारहीन, स्वार्थांध महात्माओं के हाथों बहुत तंग थे। उनका कोई बस न था। इंजीनियर साहब ने एक लम्बी सांस खींची। आशाएँ मिट्टी मे मिल गई। क्या सोचते थे, क्या हो गया। विकल होकर कमरे मे टहलने लगे।

उन्होने जरा देर पीछे पत्र को उठा लिया और अन्दर चले। विचार था कि रामा को यह पत्र सुनावे। मगर फिर ख्याल आया कि वहाँ सहानुभूति की कोई आशा नहीं। क्यों अपनी निर्बलता दिखाऊँ? क्यो मूर्ख बनूं? यह बिना व्यंग्य कहे न रहेगी। यह सोचकर वे आँगन से लौट गए।

सरदार साहब स्वभाव के दयालु थे, और कोमल-हृदय आपत्तियो मे स्थिर नही रह सकता। वे दुःख और ग्लानि से भरे हुए सोच रहे थे कि मैंने ऐसे कौन से कर्म किए है जिनका मुझे यह फल मिल रहा है। बरसो की दौड़-धूप के बाद जो कार्य सिद्ध हुआ था वह क्षण-मात्र मे नष्ट हो गया। अब वह मेरे सामर्थ्य से बाहर है। मै उसे नही सॅभाल सकता। चारों ओर अन्धकार है। आशा का प्रकाश नहीं, कोई मेरा सहायक नहीं। उनके नेत्र सजल हो गए।

सामने मेज पर ठेकेदारो के बिल रक्खे हुए थे। वे कई सप्ताह से यों ही पड़े थे। सरदार साहब ने उन्हें खोलकर भी न देखा था। आज आत्मिक ग्लानि और नैराश्य की अवस्था उन्होंने इन बिलों को सतृष्ण आँखो से देखा। जरा से इशारे पर ये सारी कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं। चपरासी और क्लर्क केवल मेरी सम्मति के सहारे सब कुछ कर लेंगे। मुझे जबान

हिलाने की भी कोई जरूरत नहीं। न मुझे लज्जित ही होना पड़ेगा। इन विचारों का इतना प्राबल्य हुआ कि वे वास्तव में बिलो को उठाकर गौर से देखने और हिसाब लगाने लगे कि उनमे कितनी निकासी हो सकती है।

मगर शीघ्र ही आत्मा ने उन्हे जगा दिया—आह! मै किस भ्रम मे पड़ा हुआ हूँ? क्या उस आत्मिक पवित्रता को, जो मेरी आजन्म की कमाई है, केवल थोड़े से धन पर अर्पण कर दूं? मै जो अपने सहकारियो के सामने गर्व से सिर उठाए चलता हूँ, जिससे मोटरकार वाले मेरे भ्रातृगण मुझसे आँखे नहीं मिला सकते, वही आज अपने उस सारे गौरव और मान को—अपनी संपूर्ण आत्मिक सम्पत्ति को—दस-पाँच हजार रुपयों पर त्याग दूं! ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

तब उस कुचेष्टा को परास्त करने के लिए, जिसने क्षणमात्र के लिये उन पर विजय पा ली थी, वे उस सूनसान कमरे मे जोर से ठट्ठा मार कर हँसे। चाहे यह हँसी उन बिलो ने और कमरे की दीवारों ने न सुनी हो, मगर उनकी आत्मा ने अवश्य सुनी। उस आत्मा को एक कठिन परीक्षा से पार पड़ने पर परमानन्द हुआ।

सरदार साहब ने उन बिलों को उठाकर मेज के नीचे डाल दिया। फिर उन्हे पैरो से खूब कुचला। तब इस भारी विजय पर मुसकराते हुए वे अंदर गए।

( ५ )

बड़े इंजीनियर साहब नियत समय पर शाहजहाँपुर आए। उनके साथ सरदार साहब का दुर्भाग्य भी आया। जिले के सारे काम अधूरे पड़े हुये थे। उनके खानसामा ने कहा—'हजूर! काम कैसे पूरा हो। सरदार साहब ठेकेदारों को बहुत तंग करते है। हेडक्लर्क ने दफ्तर के हिसाब को भ्रम और भूलो से भरा

हुआ पाया। उन्हें सरदार साहब की तरफ से न कोई दावत की गई, न कोई भेंट। तो क्या सरदार साहब के कोई नातेदार थे जो गलतियाँ न निकालते ?'

जिले के ठेकेदारों ने एक बहुमूल्य डाली सजाई और उसे बड़े इंजीनियर साहब की सेवा में लेकर उपस्थित हुए। वे बोले—"हुजूर! चाहे गुलामों को गोली मार दें मगर सरदार साहब का अन्याय अब नहीं सहा जाता। कहने को तो कमीशन नहीं लेते, मगर सच पूछिए तो जान ले लेते हैं।"

चीफ इंजीनियर साहब ने मुआइने की किताब में लिखा—"सरदार शिवसिंह बहुत ईमानदार आदमी है। उनका चरित्र उज्ज्वल है। मगर वे इतने बड़े जिले के कार्य का भार नहीं सँभाल सकते।"

परिणाम यह हुआ कि वे एक छोटे जिले में भेज दिए गए और उनका दरजा भी घटा दिया गया।

सरदार साहब के मित्रों और स्नेहियों ने बड़े समारोह से एक जलसा किया। उसमें उनकी धर्मनिष्ठा और स्वतन्त्रता की प्रशंसा भी की। सभापति ने सजल नेत्र होकर कंपित स्वर से कहा—"सरदार साहब के वियोग का दुःख हमारे दिल में सदा खटकता रहेगा। यह घाव कभी न भरेगा।" मगर "फेयरवेल डिनर" में यह बात सिद्ध हो गई कि स्वादिष्ट पदार्थों के सामने वियोग का दुःख दुस्सह नहीं होता।"

यात्रा के सामान तैयार थे। सरदार साहब जलसे से आए तो रामा ने उन्हें बहुत उदास और मलिन-मुख देखा। उसने बार-बार कहा था कि बड़े इंजीनियर के खानसामों को इनाम दो। हेडक्लर्क की दावत करो। मगर सरदार साहब ने उनकी बात न मानी थी। इसलिये जब उसने सुना कि उनका दरजा भी घटा और बदली भी हुई तब उसने बड़ी निर्दयता से अपने

व्यंग्य-बाण चलाए। मगर इस समय उन्हे उदास देखकर उससे न रहा गया। बोली—"क्यो इतने उदास हो ?" सरदार साहब ने उत्तर दिया, "क्या करूँ हँसूं ?" रामा ने गम्भीर स्वर से कहा—"हँसना ही चाहिये। रोये तो जिसने कौड़ियो पर अपनी आत्मा भ्रष्ट की हो, जिसने रुपयो पर अपना धर्म बेचा हो। यह बुराई का दंड नही है। यह भलाई और सज्जनता।का दण्ड है। इसे सानन्द झेलना चाहिए।"

यह कहकर उसने पति की ओर देखा।तो नेत्रो में सच्चा अनुराग भरा हुआ दिखाई दिया। सरदार साहब ने भी उसकी ओर स्नेह-पूर्ण दृष्टि से देखा। उनकी हृदयेश्वरी का मुखारविंद सच्चे आमोद से विकसित था उसे गले लगा कर वे बोले—"रामा ? मुझे तुम्हारी ही सहानुभूति की आवश्यकता थी। अब मैं इस दंड को सहर्ष सहूँगा।"

## अभ्यास के लिये

१—इस कहानी का कथानक सङ्क्षिप्त रूप में अपने शब्दो मे लिखो।

२—इस कहानी के पात्रों के नाम बताओ, और यह बताओ, कि किसका चरित्र सर्वश्रेष्ठ है, और क्यो ?

३—इस कहानी की भाषा के आधार पर प्रेमचन्द जी की भाषा पर अपने विचार प्रगट करो।

४—इन कहानी की शैली के आधार पर प्रमाणित करो, प्रेमचंद जी की शैली पर उर्दू की छाप है।

---

# ६—शिक्षा

[ लेखक—माननीय श्री सम्पूर्णानद ]

हिन्दी प्रेमी काग्रेस-कार्य-कर्त्ताओं में माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी का स्थान अत्यन्त गौरव-पूर्ण है। आपने बनारस 'क्वींस कालेज' से बी० एम-सी० पास कर, 'प्रयाग ट्रेनिंग-कालेज' से एल० टी० परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आध्यापक के रूप में आपने अपना जीवन प्रारम्भ किया, और 'प्रेम-महा-विद्यालय, वृन्दावन'; 'हरिश्चन्द्र हाई स्कूल बनारस'; 'डुंगर कालेज, बीकानेर' और 'राजकुमार कालेज, इन्दौर', प्रभृति संस्थाओं मे अध्यापन कार्य किया। काशी विद्यापीठ मे भी आप कई वर्ष तक शिक्षक का कार्य करते रहे हैं।

आप काग्रेस के एक प्रसिद्ध समाजवादी नेता हैं, और राष्ट्रीय-आन्दोलन मे कई बार जेल भी जा चुके हैं। अखिल-भारतीय काग्रेस कार्यकारिणी के आप क्रियाशील सदस्य रह चुके हैं, और प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के कई बार आप मन्त्री भी रह चुके हैं। समाजवाद के सिद्धान्तों के आप पूर्ण पण्डित हैं। 'समाजवाद' और 'आर्यों के आदि देश' नामक पुस्तकों पर दो बार क्रम-क्रम से आपको १२००) का 'मंगला प्रसाद पारितोषिक, भी प्राप्त हो चुका है। बम्बई अधिवेशन के अखिल भारतीय समाजवादी सम्मेलन के आप सभापति भी चुने गये थे। सन् १६३८ में जब काग्रेस मन्त्री-मण्डल बना तो आपको उत्तर प्रदेश के शिक्षा-मन्त्री का गौरव-पूर्ण पद दिया गया जिसे आपने बड़ी योग्यता से [illegible]या। इधर पुनःकांग्रेस के मन्त्रि-मण्डल बनाने पर आप फिर शि[illegible]न्त्रि बनाये गये; कुछ दिन आपने अर्थ-मन्त्री के पद को भी सँभाला, और अब २८, दिसम्बर १६५४ से आप मुख्य मन्त्री हैं।

आपका राजनीतिक और साहित्यिक जीवन घुला मिला है। राजनीति, दर्शन और शिक्षा सम्बन्धी आप कई सुन्दर ग्रंथ लिख चुके हैं। सन् १६४० ई० में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के २६ वे अधिवेशन में आप सभापति का आसन भी ग्रहण कर चुके हैं। 'समाजवाद', 'अन्तर्राष्ट्रीय विधान', 'ब्राह्मण सावधान', 'गणेश चिद्विलास' और 'भाषा की शक्ति' आदि आपकी प्रमुख पुस्तके हैं। प्रस्तुत 'शिक्षा' पाठ 'चिद्विलास' से उद्धृत किया गया है।

**समाज का सम्यक् संचालन तभी हो सकता है जब प्रत्येक नागरिक पर दायित्व हो। जो समाज अपना भार थोड़े से व्यक्तियो के कन्धे पर देता है उसको इस बात के लिए तैयार रहना चाहिये कि एक दिन उसके सारे अधिकार इन थोड़े से व्यक्तियों के हाथो मे चले जायँगे। फिर उसको अपनी खोई सम्पत्ति को वापस लेने के लिए विकट लड़ाई करनी होगी। परन्तु नागरिक समाज का काम तभी सँभाल सकता है, जब उसमे उसकी योग्यता हो और वह सामाजिक जीवन के लक्ष्य को समझता हो। यह बात शिक्षा पर निर्भर करती है।**

शिक्षा का अर्थ व्यापक है। साधारणतः उसको बौद्धिक व्यायाम का समानार्थक मान लिया जाता है। छात्र को साहित्य, विज्ञान, इतिहास, राज-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, जितने भी पाठ्य विषय है, पढ़ा दिये जाये और वह कुशल चिकित्सक या अध्यापक या इंजीनियर जैसा कुछ बना दिया जाय। समाज को ऐसे लोगो की बराबर आवश्यकता रहती है। यदि हर मनुष्य को उसकी योग्यता के अनुसार काम और हर काम के लिए कुशल मनुष्य मिल जाय तो सभी सुखी और सम्पन्न रहे।

यह मत निराधार नही है। समाज को ऐसे लोगो की सदा आवश्यकता रहती है जो उसके अर्थ और काम का सम्पादन कर सके। परन्तु यदि अर्थ और काम पर ही ध्यान दिया गया तो

स्पर्धा ही उन्नति का साधन वन जायगी। सवकी दृष्टि अपने ऊपर केन्द्रीभूत होगी, हितों का संघर्ष जारी रहेगा और समाज शान्ति के लिए तरसता रह जायगा

हित-संघर्ष का कारण यही है कि सव अपने स्वार्थ, अपने अर्थ और काम को ढूँढ़ते है। किसी को किसी से द्वेष नही है, सवको अपने से राग है। एक अंधेरे कमरे मे यदि दस मनुष्य वन्द कर दिये जायँ और सव बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ़ रहे हो तो कई वार आपस मे टकरा जायँगे। किसी को किसी से वैर नही है पर सव केवल अपने लिए द्वार ढूँढ़ रहे है, इसी से टकराते है। एक दूसरे से लड़ने से शक्ति का अपव्यय होता है। वही मनुष्य यदि यह समझ ले कि सवका एक ही उद्देश्य है, तो उनकी सम्मिलित शक्ति का उपयोग हो सके। ऐसी दशा में यदि छुटकारे का द्वार न मिला तव भी लड़कर एक दूसरे की विपत्ति वढ़ायी तो न जायगी। ठीक यही वात समाज में है। सवकी यही दशा है। यदि यह वात समझ मे आ जाय कि सव का हित एक ही है और वह सहयोग से प्राप्त हो सकता है तो आपस का द्वन्द्व वन्द हो जाय। सवको सुख-समृद्धि प्राप्त हो; कम से कम हम एक दूसरे के दुःख को वढ़ाने के साधन न वनें।

छात्रों की कोमल वुद्धि में यह वात आरम्भ से ही वैठानी चाहिए। चारो ओर सौन्दर्यमय वातावरण में प्रकृति-छटा और कलापूर्ण कृतियों के वीच में छात्र को जीवन विताना चाहिये। वचपन से ही तप और त्याग का अभ्यास न पड़ा तो आगे चलकर कठिनाई होगी।

मनुष्य शरीर यों ही खो देने की वस्तु नहीं है। अपनी वासनाओं की तृप्ति तो पशु भी कर लेते हैं, परन्तु मनुष्य को अपने वहुत होने का गर्व है। उसको उस गर्व के अनुरूप अपना

जीवन भी बनाना चाहिए। वासना का दमन मनुष्य की शोभा है; अपने को यथाशक्य दूसरो की सेवा में लगाना उसका आदर्श है, आत्म-साक्षात्कार उसके जीवन का प्रधान लक्ष्य है। शारीरिक बल या विद्या सांसिद्धिक बाते है, परन्तु इनकी प्राप्ति की कुछ सहज सीमाएँ भी है। दूसरे से विद्या या बल या वैभव मे कम होना दुःख की बात हो, परन्तु लज्जा की बात नहीं है। अपने धर्म के पालन का प्रयत्न न करना, अर्थ और काम को धर्म से श्रेष्ठ मानना मनुष्य के लिये लांछन है। यह भाव शिक्षा के द्वारा दृढ़ किया जाना चाहिए।

ऐसी शिक्षा पाया हुआ मनुष्य समाज का योग्य नागरिक होगा। सब धर्म साक्षात्कर्ता नही हो सकते परन्तु धर्म-मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति सबकी होनी चाहिए। कोई विरला ही ब्रह्मवेत्ता होगा, थोड़े ही योगाभ्यासी होगे, थोड़े ही पूर्णतया निष्काम, पूर्णतया यज्ञभाव से लोकसंग्रह-रत हो सकेंगे, परन्तु प्रायः सब परार्थ को स्वार्थ ऊँचा स्थान देंगे, प्रायः सब राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार मे सहयोग और सद्भाव के समर्थक होगे।

ऐसी शिक्षा देना कठिन नही है। अभेद, एकता, जीव का स्वरूप है। अविद्या के कारण उसको नानात्व की, पार्थक्य की, प्रतीति है परन्तु जब कभी थोड़ी देर के लिए भी वह पार्थक्य को भुला पाता है, एकत्व की झलक पा लेता है, तो उत्फुल्ल हो उठता है। नानात्व के बीच मे भी वह अपने को ढूँढ़ता रहता है। इसलिए जो शिक्षा उसको एकत्व की ओर ले जायगी वह उसको ग्राह्य होगी।

ऐसी शिक्षा देना सब का काम नही है। साधारण पाठ्य विषयों के अध्यापक तो बहुत मिल सकते है, परन्तु विद्यार्थी को धर्म की शिक्षा देकर दूसरा जन्म देने की योग्यता रखने

वाले आचार्य कम ही होते है। यह काम ब्रह्मबन्धु का नहीं ब्राह्मण का है। आचार्य छात्र के लिए तो पूज्य है ही, समाज का कर्तव्य है कि ऐसे व्यक्तियों का समादर करे और उनको निष्कंटक काम करने का अवसर दे।

## अभ्यास के लिये

१—शिक्षा का वास्तविक अर्थ क्या है ? अच्छे नागरिक बनाने के लिये किस प्रकार की शिक्षा अपेक्षित है ?

२—अर्थ और काम को धर्म से श्रेष्ठ मानना मनुष्य के लिये लाञ्छन क्यों है ?

३—ब्रह्मबन्धु और ब्राह्मण में लेखक के विचार से जो अन्तर है उसे स्पष्ट कीजिए।

४—इस पाठ के लेखक के विषय में आप जो कुछ जानते हों सन्क्षेप में लिखिए।



# ७—हमारा सनातन पंचायत राज्य

[ लेखक—श्रीयुत डा० हेमचन्द्र जोशी ]

जोशी जी हिंदी, अंग्रेजी और फ्रेंच के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं। आप कई प्रादेशिक भाषाओ के भी अच्छे ज्ञाता हैं। आप उन व्यक्तियो मे से एक हे, जिनका मनन और अध्ययन करना ही लक्ष्य होता है। आपके निबधो मे आपके प्रगाढ़ अध्ययन की छाप रहती है। आधुनिक पत्रकार कला का भी, आपका ज्ञान आदर्श है। आपके सपादकत्व मे कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले मासिक 'विश्वमित्र' ने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी।

आप विविध विषयो के ज्ञाता हैं। फिर भी आप अतर्राष्ट्रीय और अर्थशास्त्र सबंधी लेख अधिक लिखते हैं। आपकी भाषा विद्वत्तापूर्ण और प्रवाहमय होती है। ओजस्विता उसका प्रधान गुण है। आपकी भाषा मे सस्कृत के तत्सम शब्दो की बहुलता रहती है, किंतु आवश्यकता-नुसार अत्र-तत्र अन्यान्य भाषाओ के भी शब्द मिलते हैं।

आपकी शैली भावोत्तेजक और व्यजक है। विषयो के अनुसार आपकी शैली परिवर्तित होती रहती है।

मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की सरकारो ने गांव-पंचायत-राज को भारत मे फिर नये सिरे से जन्म दिया है। यह घटना बहुत महत्व की है। हमारे देश मे सदा से पचो का राज रहा है और उनका निष्पक्ष निर्णय सर्वोपरि माना गया है। पंचायती राज को इतना उत्तम और न्यायपूर्ण समझा गया कि आज भी 'पंच परमेश्वर' का मुहावरा प्रचलित है। हम अपने मुँह कितने ही मियां मिट्ठू बने, पर इतना स्पष्ट है कि भारत मे धन को अति अधिक मान दिया गया और दिया जाता है। "सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति"-सब गुणो का आधार धन है, यह बहुत पुराना

श्लोक है। ऐसे सैकड़ों श्लोकों मे भारत मे रुपये की महिमा गायी गयी है। स्वयं परमात्मा को 'हिरण्यवर्ण' याने सोने के रंग का बताया गया है। इस समय भी धन और धनियों का अति मान है। फल यह हुआ कि दाहिने-बायें ऊपर-नीचे जिधर देखो लोग राष्ट्र की हत्या कर के भी धन कमाना महान् पुण्य समझ रहे है। इसी कारण सत्य और अहिंसा पर स्थित कांग्रेसी राज मे भी सर्वत्र भ्रष्टाचार, पक्षपात, अयोग्य का आदर और योग्य का निरादर देखने मे आता है, घूसखोरी आदि रोकने मे सरकार असमर्थ सिद्ध हो रही है।

## गॉव-पंचायतें जनता का राज लायेंगी

गाँव-पंचायते जनता का राज ला रही है। महात्मा गांधी का रामराज इन्ही के द्वारा बहुत शीघ्र आयेगा। गाँव पंचायतें साढ़े सात लाख गाँवों का आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वराज्य और सुराज्य लायेंगी, यदि इनमे भी भ्रष्टाचार न घुस जाय तो। सच तो यह है कि स्वराज्य तथा सुराज्य सरकार और जनता की सचाई और सदाचार पर चलते है, अन्यथा जिस देश की सरकार भ्रष्टाचारी हो और जनता उसका साथ दे, वह राष्ट्र डूब जाता है। इसलिए सरकार को अपना सुधार करना चाहिए तथा जनता के सामने आदर्श रखना चाहिए कि वह सत्य तथा अहिंसा के पथ से विचलित न हो। यह तो हुआ नैतिक उपदेश जिसका स्वयं आचरण कर बापू ने भारत को उठाने का घोर प्रयत्न किया। अब भारत में पंचायतों का इतिहास सुनिए।

## वैदिक काल में

वैदिक काल में आर्य जनता यूनान के 'पौर जनपदों' ( सिटी स्टेट्स ) की भाँति छोटे-छोटे जनपदों, गोत्रों, गणों, व्रतों.

संघो और राष्ट्रो ( राष्ट्र=राज+त्र ) मे विभक्त थी। ये सब किसी न किसी रूप मे जनतंत्र थे जिनमे बड़ो और बूढ़ों ( ज्येष्ठ ) की यथेष्ठ प्रतिष्ठा थी तथा उनकी सम्मति और आज्ञा अक्सर मानी जाती थी। इनके भीतर रहने वाले सभी सदस्य अपना अपना मत देते थे और उसकी उपयुक्तता सिद्ध करने के लिए जोश के साथ अपने अपने मत का प्रतिपादन करते थे। गण तो वैदिक काल मे बहुत रहे होगे। ऋग्वेद मे 'सभा साह' याने सभा ( स+भा ) को जीतने वाले की बहुत तारीफ की गई है। सभेय शब्द आदर-वाचक है। याद रखना चाहिए कि 'सभ्य' शब्द इसी सभेय से बना है, इसलिए वैदिक काल मे सभ्यता या सभेयता का सर्वत्र मान था। यह सभ्यता असल मे, गॉव-पंचायतो की पंची थी। पंच सभ्य कहे जाते थे क्योकि वे सभा मे बैठ कर ग्राम-सुधार या शिक्षा, दंड, गोचर, भूमि, खेत, नहर आदि का प्रबन्ध करते, गॉव की भलाई के विषयो पर वाद-विवाद करते और निष्पक्ष न्याय करते थे।

इसी तरह का एक शब्द 'गण्य' है। इसका अर्थ है गण मे जाने या बैठने योग्य। इसका एक उच्चारण 'गणिय' भी है जो आज तक कुमाऊनी भाषा मे वर्तमान है। हिन्दी मे गण्यमान्य आदरसूचक है। प्राचीन समय मे गण राज्य था और गणपति थे। और जब गण या सभा में गणपति का स्वागत किया जाता था तब गाया जाता था :—

गणानां त्वा गणपति ग्वम् हवामहे।
प्रियानां त्वा प्रियपति ग्वम् हवामहे।
निधीनां त्वा निधिपति ग्वम् हवामहे।

—हे गण के गणपति ! हम तुझे बुलाते है या तेरा स्वागत करते हैं, तू हमारे प्यारो का भी प्यारा है। इसलिए हमने तुझे गणपति याने प्रेसीडेंट चुना। तू हमारी निधियो का निधिपति

( खजांची ) है। हम तेरा स्वागत करते है।" यह स्तुति स्पष्ट है। इसमें कहीं अस्पष्टता नही है। यह गाँव-पंचायत के अध्यक्ष, चुने हुए प्यारे नेता तथा उस खजांची की अभ्यर्थना और स्वागत है, जो सारे गण का हितकारी था। पर खेद है कि संस्कृत से और भारतीय संस्कृति से अनभिज्ञ कुछ यूरोपियनो और एक दो भारतीयो ने भी गणपति का महान् अनर्थकारी अर्थ किया है। ग्रामणी भी गाँव का या गाँव पंचायत का अध्यक्ष होता था।

## बौद्ध काल में

बौद्धकाल में गाँव-पंचायत का अध्यक्ष ग्रामभोजक कहलाता था। वैदिक काल मे समिति के सदस्यो को राजा कहा जाता था। 'राजानः समितिमिव इयानाः,' "जैसे राजा समिति को जाते हैं" ऐसा ऋग्वेद में पाया जाता है। बौद्धकाल मे भी देखा जाता है कि गणो के प्रधान राजा कहे जाते थे।

वैदिक काल से आपस में मिल कर रहने की प्रवृत्ति आर्यों मे बहुत थी। उस समय गणो के कार्य आरंभ करते समय जो प्रार्थना की जाती थी, वह इस बात का प्रमाण देती है। एक प्रार्थना है :—

स्वस्ति पंथामनुचरेम सूर्याचंद्रमसाविव,
पुनर्ददतानता जानता संगमेमहि।

याने "सूर्य और चंद्रमा की तरह हम ऐसे पथ पर चलें जो मंगलमय हो। हमारा संग ऐसे लोगों के साथ हो जो दानी, अहिंसक तथा जानकार हो। इससे यह मालूम होता है कि वैदिक गणसभा के सदस्य भली-भाँति जान गए थे कि लोभी ( घूसखोर और भ्रष्टाचारी ), हिंसक ( दूसरों को हानि पहुँचाने की भावना वाले ) और अज्ञानी लोग गण को डुबाते हैं वैदिक गाँव पंचायतों में 'संज्ञान' या 'संज्ञान' का बहुत प्रचार था।

वैदिक आर्य अपने अनुभव से जान गए थे कि फूट गाँव पंचायतो का सत्यानाश कर देती है। और यह परस्पर का विद्वेष लोभ से जनमता है जिसकी जड़ मे यह प्रवृत्ति काम करती है कि मै समाज के और सभ्यो से अधिक खाऊँ, मेरे पुत्र, कन्या, स्त्री आदि सब औरो से अधिक भाग प्राप्त करें। यह ममता मनुष्य मे स्वाभाविक है, किन्तु मनुष्यता इसी मे है कि यह प्रवृत्ति देशहित और लोक कल्याण के लिए दबाई जाय। इसीलिए वैदिक गॉव-पंचायतो की एक और प्रार्थना यह थी :—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम,
देव भागम् यथापूर्वे संजानाना उपासते।

"सग संग चलो, संग मे बोलो, तुम्हारे मन एक हो, तुम सब ( अपनी सम्मिलित सम्पति का ) भाग गॉव की एकता का ज्ञान ध्यान मे रखते हुए, बराबर बराबर करो, जैसा कि देवता पहले से करते आए है। इस सूक्त मे गॉव पंचायतो के जीवन का मूल सूत्र है। 'स' शब्द का अर्थ एक है। यह 'सं' से बना है, इसलिए यह संज्ञान का सूक्त एकता के ज्ञान का पंचायतो और गॉवो मे प्रचार करता है। अथर्ववेद का एक सूक्त इस विषय को और भी स्पष्ट करता है और बताता है कि उस समय भारत मे ( काबुल से लेकर पंजाब तक ) संघवाद और गणवाद के सिद्धान्त गॉव पचायतो द्वारा कार्य मे परिणत हो रहे थे। वह यह है। पचायत का काम आरम्भ होने से पहले यज्ञ का जशन कराते समय पुरोहित ( पुर = आगे और हित = धित = रखा हुआ, इसीलिए पुरोहित वैदिक काल मे प्रेसीडेन्ट या अध्यक्ष का नाम था जो लड़ाई के समय भी आगे रखा जाता था ) सारे गॉव की पंचायत को जिसमे सब गॉव वाले उपस्थित रहते थे, उपदेश देता था—

समानी प्रपा सह वो अन्न भागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।

'तुम्हारा प्याऊ ( जल पीने का स्थान ) एक हो तुम एक साथ अन्न खाओ। तुमको मै एक जुए में एक साथ जोड़ देता हूँ।' वैदिक गाँव पंचायतो में गाँव का गाँव सम्मिलित श्रम द्वारा पंचायती सम्पति रखता था जो 'निधियो के निधिपति', गाँव या गण के गणपति के हाथ मे रहती थी। इसका उपभोग सब एक साथ करते थे।

ऐसा भी लिखा है कि कुल्लू, कांगड़ा, कुमाऊँ तथा गढ़वाल मे जनतंत्र था और कोई राजा न था बल्कि सब मनुष्य मिलकर राज करते थे। "ये के च परेण हिमवंतं जनपदा उत्तरकुरवे उत्तरभद्रा इति वैराज्यामैव तेऽभिषिच्यंते।" यहाँ कुछ विद्वान् परेण का अर्थ 'हिमालय से परे' याने तिब्बत समझते हैं। यह भ्रम है। 'परेण' का अर्थ ऊपर है। कुमाऊं में प्रायः बाइस सौ साल पहले के दो सिक्के मिले है जो किसी राजा के नहीं है। उनमें सिर्फ 'शिवदत्त' लिखा है जो बताता है कि कुमाऊँ या हिमालय प्रदेश मे उस समय भी गण राज्य था तथा गणपति अपने नाम के आगे राजा सम्राट आदि कोई उपाधि न लगाता था। उस समय कुमाऊँ बौद्ध था और संघबद्ध था।

## संघ-महिमा

बौद्ध काल में 'संघ' की महान् महिमा थी। सब बौद्ध "संघ सरणं गच्छामि" का नारा लगाते थे। पाणिनि के कुछ सूत्रों के अनुसार 'संघात' शब्द का अर्थ भीड़-भाड़ है और संघ का अर्थ गण या 'संघरूप समूह' है। बौद्ध समय में छोटे-छोटे

गाँवो मे भी गण थे। कुसीनारा में मल्लो का गण था, पावा में भी ये मल्ल ही सारे गाॅव की सभा द्वारा राजकाज चलाते थे। ये छोटे गाॅव अपने निवासियो को पंचायत के पंच मानते थे। वहाँ चुनाव की आवश्यकता ही न थी क्योकि दो ढाई सौ जन-संख्या के ये गाॅव-गाॅव के सभी रहने वालो को राजकाज तथा आर्थिक और सामाजिक प्रबन्ध का समान भागीदार समझते थे। इनका सिद्धान्त था कि सब मनुष्य गाॅव के सुख-दुख के लिये समान रूप मे जिम्मेदार है। सुख पहुँचाना प्रत्येक का धर्म है, दुख देने का अधिकार किसी को नही है।

## अनायास शस्त्र

भगवान कृष्ण वृष्णि गण के गणपति थे। एक बार अंधक, वृष्णि, कुकुर और भोज गणो मे फूट पड़ गयी। इन चार गणों के नेता एक दूसरे को बुरा बताने लगे और गणो के भीतर भी शत्रुता फैल गयी जिससे गण कमजोर होने लगे। कृष्ण ने नारद को यह सब हाल बताया और मेल का उपाय पूछा। उन्होने वही ढंग मेल पैदा करने का बताया जो बापू जी बताते—नारद ने गालिब के शब्दो मे कहा—

बनाया चाहता है काम तू तानों से ऐ गालिब
तेरी बेमेहर बातो से वह तुझ पर मेहरबां क्यो हो।

सच है आपस मे मेल और प्रेम बढ़ाने के लिए कठोर शब्द तलवार का काम करते हैं और उक्त गणो के भीतर एक नेता दूसरे नेता को, जनता नेताओं को और नेता जनता को जली कटी सुनाने लगे थे। इससे फूट बढ़ रही थी। फूट बन्द करने का एक हथियार नारद ने कृष्ण को बताया। उन्होने कहा कि 'ऐसे संकटकाल मे 'अनायास-शस्त्र' काम में लाना चाहिये। 'अहिसा शस्त्र' की भाँति यह अनायास शस्त्र ऐसा उपाय है कि इसको

चलाने वाले की हार राजनीति के क्षेत्र मे कभी नही हो सकती है। हे कृष्ण! यह हथियार ऐसा है कि मीठी बातो से ही कलेजे के पार हो जाता है। कठोर वाणी बोलने वालो की जीभ मुलायम कर, गण की अधिक से अधिक जितनी ताकत को उतना गल्ला जनता मे बॉट, शत्रुओ को तथा जनता को क्षमा कर सीधा और सच्चा व्यवहार कर योग्यो की पूजा, यह अनायास शस्त्र प्राप्त होता है। जो लोग कड़वी बात कह के कुछ प्राप्त करना चाहते हैं तू उनके हृदय की और मन की शांति कर, कभी यह न समझ कि दूसरे महात्मा नही है, सहायवान नहीं हैं। संघो का विनाश आपस की फूट से होता है। हे केशव! तू 'संघमुख' अर्थात् सरपंच है। ऐसा उपाय कर कि तेरी सरपंची मे तेरा संघ नष्ट हो।"

गणो या गाँव पंचायतो के बारे मे लिखा है कि लोभ इनकी जड़ खोद देता है। यह बात पंचायतो और स्वयं राष्ट्रों के विषय मे सत्य है। इस समय हमारे उँगली मे गिनने लायक कुछ नेताओं को छोड़ अन्य कांग्रेस-कर्मियों, सरकारी कर्मचारियों, रेलवे के नौकरों, आदि में जो भ्रष्टाचार और घूसखोरी का बाजार गरम है, उसका मूल कारण लोभ है। यदि गाँव पंचायतो मे यह लोभ घुसा तो पंचायतें हमारी फूट गाँव-गाँव पहुँचा देगी। इसे रोकने का हमे विशेष ध्यान रखना चाहिए।

गाँव पंचायते भारत मे आदिकाल से चली आ रही हैं। उनके कारण भारत के साम्राज्य चले। किसी भी राजा ने यह कुचेष्टा नहीं की कि इनकी स्वाधीनता छेड़ी जाय। कभी किसी ने उन्हें अपने वश में किया तो इनके भीतरी इंतजाम मे हाथ नहीं डाला, इन्हें पूरी स्वतन्त्रता दी। ये संस्थाएँ सत्य, अहिंसा, निष्पक्षता, निर्लोभ-भावना आदि के कारण भारत की संस्कृति तथा सभ्यता को आगे बढ़ा सकीं।

## गणों की अटूट शक्ति

गणो की अटूट शक्ति का एक कारण उनकी समानता थी। गणों या गाँव पंचायतों मे सब समान समझे जाते थे। जनतंत्र (जनपद) के सब निवासी चाहे वह पंचायती गाँव के रूप मे हो या जनपद हो, भाई-भाई समझे जाते थे। इस समानता के विषय मे वेद मे लिखा है—"अज्येष्ठासोऽकनिष्ठास एते स भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।" अर्थात् 'ये सब लोग भाई-भाई हैं, साथ-साथ गण के कल्याण के लिए बढ़ते है, और इनमे न कोई जेष्ठ है और न कोई कनिष्ठ, याने छोटी बड़ी उम्र का भी भेद-भाव नही है।' भारत मे ज्ञान का सदा महान् आदर रहा है। जहाँ ज्ञान का प्रश्न आया वहाँ कभी उम्र का ख्याल नही किया गया। "तेजस्विनां हि न वयः समीक्षते", तेजविस्यो की आयु नही देखी जाती। इसके अलावा बालक भी हो तो ज्ञान-वृद्ध कह कर उसका सम्मान भी करते थे और उसकी लोक कल्याण-कारी बाते गाँठ बाँध लेते थे। इस पर बहुत पुरानी एक कथा है। आंगिरस ऋषि की बुद्धि तीखी होने के कारण उन्हे छुटपन में ही बहुत ज्ञान प्राप्त हो गया था। उसके नातेदार बड़े बूढ़े उसके पास आकर पढ़ते थे। एक दिन उसने पाठ के अन्त मे कहा—'तुम्हारा बेटा यह कहता है, इसे गाँठ बाँध लो।" यह सुन कर बूढ़े बिगड़ गए। देवताओ के पास इस बेअदबी की नालिश हुई। देवताओ ने सब बातें सुन कर फैसला किया—"आंगिरस ने तुम्हे जो कुछ कहा है, वह उचित है।" इसका कारण यह बताया—

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पालितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवा स्थविरं विदुः॥

"सिर के बाल पकने से कोई बूढ़ा नही होता। देवता उसे बूढ़ा कहते हैं, जो भले ही जवान हो, पर ज्ञानी और अध्ययन-शील हो।" इससे पता चलता है कि आर्य सभ्यता ने ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है।

यदि गाँव पंचायते इन सिद्धान्तों पर चलेंगी तो देश की जनता ( किसान-मजदूर प्रजा ) का महान् हित कर पायेंगी। अन्यथा, वर्तमान सरकार मे जिस प्रकार भ्रष्टाचार घुस गया है, इनमे भी वह घुसा तो भारत भ्रष्टाचारमय हो जायगा, जिससे हमारी सौमुखी अवनति होगी। कांग्रेस की भूलों से देश में शान्ति और सन्तोष नहीं है। हमारा एकमात्र धर्म यह है कि अब अपनी भूलें देखे और इन देशव्यापी गाँव पंचायतों द्वारा देश का दूपित नैतिक वातावरण अनायास-शस्त्र के प्रयोग से और योग्यो का आदर करके, शुद्ध करे। इस समय देश की दशा भयंकर है। जरा फिसले कि चकना चूर हुये। सच है, जनतंत्र राज, गॉव पंचायत राज, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसि-पैलिटी, सभी गणराजो के लिए महाभारत का निम्न श्लोक आज भी ठीक है .—

नान्यत्र बुद्धिक्षान्तिभ्यां नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।
नान्यत्र धनसंत्यागाद्गणः प्राज्ञेव तिष्ठते।

गणराज की स्थिरता, बुद्धि, शान्ति, काम, क्रोध को मनमानी घरजानी करने से रोकने, लोभ मे नहीं, धन का खुले दिल से त्याग करने का तथा ज्ञान मे है। यह सनातन नियम गाँव पंचायत का आधार है। इसका अनुसरण करने से ही मुक्ति है, अन्यथा विनाश मुँह बाये खड़ा है। 'नान्यः पंथा विद्यतेयनाय'

## अभ्यास के लिए

१—'पञ्च परमेश्वर' से क्या तात्पर्य समझते हो ?

२—वैदिक काल किसे कहते हैं ? इस काल में पचायतों का क्या स्वरूप था ?

३—गाँव की पचायते किन सिद्धान्तों पर चले, कि देश की जनता को अधिकाधिक लाभ प्राप्त हो ?

४—'पचायत राज्य' पर एक निबंध लिखो।

५—अपने वाक्यों मे सयुक्त करो :—

अभ्यर्थना, प्रवृत्ति, अध्ययनशील।

# ८—बीज की बात

[ लेखक—श्री राय कृष्णदास ]

श्री राय कृष्णदास जी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कुटुम्बी हैं। आपका जन्म काशी मे स० १६४६ वि० को हुआ था। नौ वर्ष की अवस्था से ही आप कविता करने लगे थे। बारह वर्ष की अल्प आयु में आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। 'दुलारे रामचन्द्र' नाम से १६ वे वर्ष मे आपने एक उपन्यास लिखना प्रारभ किया, जो अधूरा ही रह गया। कविता में आपके मार्ग दर्शक बाबू मैथिलीशरण गुप्त हैं। आप बगला साहित्य से भी प्रभावित हुए हैं। आपकी 'साधना' रवीन्द्रनाथ की 'गीताजलि' के ढंग पर रची गई है। आपकी कहानियो पर भी रवीन्द्र और प्रभात का प्रभाव पड़ा है। आप कला-कोविद भी हैं। आपकी सबसे बड़ी कीर्ति आपका किया हुआ कलाकृतियो का सग्रह है, जो आजकल नागरी प्रचारिणी सभा, काशी का एक अग है। आपने हिन्दी-साहित्य की महत्त्वपूर्ण सेवायें की हैं। आपकी गद्य-रचनाओ मे मानव हृदय की अनुभूतियो की बडी मर्मस्पर्शी अभिव्यजना हुई है। भावात्मक शैली के निर्वाह में आपने काव्य कल्पना का विशेष आश्रय लिया है। आपकी अधिकाश गद्य रचनाएँ दार्शनिक भावो से परिपुष्ट और सुन्दर हैं। भावनाओ की गम्भीरता के साथ-साथ आपकी भाषा बड़ी ही परिमार्जित एव प्रौढ़ है। नित्य की व्यावहारिक और चलती हुई भाषा में भाव व्यंजना की इतनी क्षमता प्रदर्शित करना आप ही का काम है। तत्सम शब्दों के साथ-साथ नित्य की बोलचाल के तद्भव तथा यत्र-तत्र उर्दू और देशज शब्दों का उपयुक्त प्रयोग भी आपने किया है। भावावेश के चमत्कारों का प्यारकी शैली मे उतना ही परिपुष्ट रूप मिलता है, जितना प्रसाद जी

की शैली मे। शब्दों का चमत्कार और पदो के लालित्य के साथ-साथ अलकृत भाषा का प्रयोग भी आपने बडी कुशलता से किया है। आपकी उत्कृष्ट और प्रौढ शैली मे आपके व्यक्तित्व की गहरी छाप है। जैसे सुन्दर आप कलाविद् हैं वैसी ही कला परिपुष्ट आपकी गद्य-शैली है।

राय कृष्णदास ने कविता, गद्य गीत, कहानियाँ एव सलाप आदि की रचना की है। आपके साधना, छायापथ, प्रवाल, अनाख्या और सुधाशु सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। बीज की बात—'सुधाशु' मे से ही उद्धृत किया गया है।

"जब किसान अपने खेत का झाड़-झंखाड़ बटोर कर खाद के गढ़े से फेकेने लगा, तो मै भी उन्हीं मे की एक पतली सी टहनी से चिपटकर उसी गढ़े मे जा पड़ा और अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।"

"कृषक दिन-भर का परिश्रम करके आनन्द से गाता हुआ घर लौटा। उसे केवल परिश्रम का ही आनन्द न था, उसने आज, ढेर-की-ढेर खाद का सामान भी जुटा लिया था। निःसंदेह अगले साल फसल दूनी होगी। यही नहीं, उसने अपनी खेती के शत्रु—हमारे स्वयंरुह वनस्पति-वंश—का भी समूल नाश कर डाला था परन्तु उसे मेरे अस्तित्व का पता न था।"

"खलिहान समाप्त हुआ, गरमी आई। ऋण, व्याज और देन-पोत के भार से लदे हुए कृषक अपने पेट काटकर बनियो के हाथ अनाज बेचने लगे और उसके मूल्य मे से वे अपने रक्त चूसनेवाले भू-स्वामि पितरो का तर्पण करे कि लग्न के दिन आ पहुँचे और उस धन का बहुत बड़ा अंश वैवाहिक अग्नि मे हवन हो गया। खेतिहर अपने आमोद मे मग्न थे—चरै 'हरित तृन बलि-पशु जैसे।'

"भूमिपाल का जो वज्र अभी उन पर घहराने वाला था, जम की जकात जो खूब जोरों से वसूल की जा रही थी, उसकी ओर उनका ध्यान भी न था। और कहाँ तक! जब यह नित्य का भाग्य ठहरा तो कब तक कोई हाय हाय करे। अच्छा है जो बेचारे इतनी हँसी-खुशी तो मना लेते हैं।"

"हाँ तो, खेतिहर अपने आमोद मे उलझे हुए थे और उन पर दैवी एवं मानुषी आपत्तियो के मेघ मॅडरा रहे थे। मैं उसी गढ़े में से उझक-उझक यह लीला देखकर इस प्रतिहिंसा वृत्ति से प्रसन्न हो रहा था कि तुम हमारे कृतान्त हो, तो तुम्हारे वे हैं।"

'धीरे-धीरे लू के सर्राटे बढ़ने लगे और सारा संसार एक जलता हुआ आवाँ हो उठा। ऐसे ही समय मे, मैं एक जीरे से भी नन्हा और दुबला पतला सीकिया-जवान, जलती हुई हवा की बड़वा पर सवार होकर अपना कर्मक्षेत्र खोजने निकल पड़ा।"

"हवा पर सवार अपनी धुन मे मस्त, प्रतिहिंसा का बीज-मन्त्र मैं, आतिशबाजी के बान की तरह सपाटे से चला जा रहा था कि मुझे एक ठिकाना दिखाई दिया और मैंने एक कलामंडी ली तथा उसमे पहुँच कर छिप बैठा।"

"दो खेतो के बीच एक ऊँची सी मेड़ थी। बात यह थी कि दोनो खेतवालों मे आपस में मेल न था। इसीलिए उन्होंने, अपनी खुशी से नहीं, अपनी इच्छाओं को एक तीसरे के पास बन्धक रख कर यह मेड़ बनवा दी। उसी विरोध के देहरे में मैं उनके सर्वनाश के देवता की तरह, एक छोटे से छिद्र मे, स्थापित हो गया और अवसर की प्रतिक्षा करने लगा। क्योंकि उनकी जड़ उखाड़ने के लिये मुझे अपनी जड़ जमानी थी लू के झटके ने अपने गर्म ओठों से मुझे चूमा और न जाने कहाँ चला

गया। उसकी गर्मी मेरी नस-नस मे दौड़ गई। प्रतिहिंसा के लिए मेरा खून उबलने लगा।"

"एक दिन आकाश मे घटा घिर आई। बूँदे पड़ने लगीं। पृथ्वी ने एक सोंधी उसास ली और प्रकृति-बाजीगरनी के भानुमती के पिटारे, हम बीज, अपना इन्द्र जाल पसारने लगे। दो ही चार दिन मे अंकुरित होकर खल्वाट पृथ्वी को हमने गहरी हरी कुन्तल-राशि से आच्छादित करना शुरू किया।"

"मै भी पनपने लगा मेरी दृढ़ता देख कर अन्तरिक्ष मुझे पयोदान करने लगा। मनुष्य की जलती हुई आँखें ठंडी हुई। किन्तु किसानो को वह हरियाली अंगारे की तरह मालूम होने लगी, जिसे वे अपने उपयोग मे ला सकते हो वे धीरे-धीरे हमारी सफाई करने लगे।"

"परन्तु मेरा भाग्य मेरे भाई बन्दो से भिन्न था। में ऐसी जगह जमा था जहॉ की परवाह मेरे दोनो ओर के ही कृषको को न थी। वह मेड़ थी—उन लोगो के परतन्त्र अधिकारो की बेड़ी। उसकी ओर हाथ बढ़ाने की उनकी मजाल न थी। जहाँ मनुष्य की शक्ति काम नही करती, वहॉ वह उदासीनता के बल पर विजय पाने की आशा करता है। किन्तु उदासीनता से ही दूसरो का काम बनता है।"

"इस भॉति पूर्ण स्वतन्त्रता से मै अपने उत्साह की तरह बढ़ने लगा। पूरबी हवा के झकोरो पर पेंगे मारने लगा; आनन्द-गान गाने लगा और उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा, जब मै एक से अनेक होकर मनुष्य की संहारैषणा पर पानी फेर दूँ।"

"किन्तु मनुष्य के भूमि-अधिकारों के आगे पशुओ ने सिर नही झुकाया है। मनुष्य की राजनीति, राष्ट्र-विभाजन, भूमि-क्षेत्रण पशुओ के लिए मान्य नही। चाहे मनुष्य दिन-रात उन्हे

जोतता रहे, पर वे पृथ्वी पर अपने स्वाभाविक जन्मसिद्ध अधिकारो से वंचित होने के लिए प्रस्तुत नही। राजप्रसादो के प्रचंड प्रहरी कीट-पतंगो के आक्रमण और अधिकार से उसकी रखवाली नही कर सकते।"

"सो, उन किसानो के बैलो ने मुझे कवलित कर जाना चाहा। एक ने मुझ पर मुँह भी चलाया; किंतु हमारी आत्म-रक्षा की कामना ने लाखो ही बरस पहले से इसका प्रतिकार कर रक्खा था। हमने अपनी नसो मे एक ऐसा उग्र गंध पैदा कर लिया था कि कोई पशु हमें मुँह मे ले ही न सकता था। हमारी यह परंपरागत प्रतिक्रिया उस क्षण मेरे काम आई और उस बैल ने अपने नथने फुफकारते हुए मेरी ओर से मुँह फेर लिया।"

"परतु इसी प्रसंग मे, जाने क्रुद्ध होकर या अकस्मात्, उसने मुझे कुचल दिया और मेरा कोमल हरा शिशु-शरीर छिन्न-भिन्न हो उठा। उस समय मुझे जो पीड़ा हुई, उसका अनुभव शायद दलित मानवता को हो तो हो। जो हो, उससे मेरा एक लाभ हुआ। मेरी वहिर्मुखी शक्ति अन्तर्मुखी हो उठी और मेरी सारी पनपने और वढ़ने की शक्ति मेरी जड़ो में समाकर उन्हें पुष्ट और गहरी बनाने लगी। इस प्रकार जब कुछ दिनों में उस शक्ति ने मेरी नीव बिलकुल अचल कर ली, तो उसका ध्यान मेरी ऊपरी बाढ़ की ओर गया और हेमंत के धुंधले प्रभात में मैं गहगहाकर पनप उठा।"

"किसान अपने काम मे लगे थे। उनकी फसल उनकी सेवा से बाढ़ ले रही थी और मैं 'राम भरोसे जो रहें, जङ्गल मे हरियायें' के अनुसार सुयोग के लिए सन्नद्ध हो रहा था।"

"धीरे-धीरे शिशिर ने अपना राज्य फैलाया और वह अत्याचार किया कि किसानों के सारे किये-कराये पर तुषारपात हो गया, किन्तु मैं अपनी मौज में कलिया रहा था।

"जब वसन्त आया, तो मैंने उसे अपने छोटे-छोटे कासनी फूलों की भेंट दी। और उसने मेरी भीनी-भीनी महक को अपने पवन द्वारा इधर-उधर वितरित करा दिया। अपनी इस कीर्ति से मुझे उतनी प्रसन्नता न हुई, जितनी उस वसंत के संगीत से, जिसके प्रत्येक स्वर मे मुझे अपनी तपश्चर्या की सिद्धि की मंद ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

"कृषक बेचारे दुखी थे। उनकी फसल मारी गई थी। योंही दाने-दाने को मुहताज हो रहे थे; अब तो दाने ही नही, बक्कल से भी मुहताज होने की बारी आ गई। यद्यपि मुझे उनसे कोई सहानुभूति न थी, पर मै उनके दुःख से दुखी जरूर था। और यदि वे मेरी भाषा समझ सकते तो मैं उन्हे अवश्य अपने हृदय की वेदना कह सुनाता।

"अन्य पार्थिवो के साथ पारस्परिक व्यवहार पर मैं उन्हें एक उपदेश भी दिया चाहता था। पर दुर्भाग्य, कि हमारी भाषाएँ भिन्न थी। जो हो; मै इन विचारो मे मग्न ही था कि वसन्त बीत चला और ग्रीष्म के आगमन के साथ मेरे फूलों की पंखड़ियाँ भी बीजो मे परिणत हो उठीं।

"चैती बयार वह रही थी और मारे प्रसन्नता के मेरी छाती फूली जा रही थी। असंख्य बीज अपने मुरझाते हुए पुष्पकोष मे रहने के लिए तैयार न थे। मैने कहा—'ठीक है, एकोऽहं बहु स्याम्' की सिद्धि हो ही चुकी, अब तुम देर न करो नहीं तो कही फिर खाद के गढ़े मे पहुँच गए तो न जाने कहाँ के कहाँ हो जाओगे और यह तैयार सेना कम से कम एक साल के लिए तितर-बितर हो जायगी। अतएव इसी क्षण तुम सब यहाँ फैल जाओ और इस कृषि-समृद्धि के तहस-नहस के लिए अभी से मोर्चाबन्दी कर लो।

"ठीक इसी समय पवन के एक झोंके ने आकर उन्हें बखेर ही नहीं दिया, प्रत्युत उन्ही-उन्ही स्थानो पर ले जाकर स्थापित भी कर दिया, जहाँ से उनमे का एक भी नष्ट न हो सके।

"सच है—

"उद्यमः साहसं धैर्य बुद्धिः शक्ति पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्त्तन्ते तत्र देवस्सहायकृत् ॥"

## अभ्यास के लिये

१—बीज की बात का साराश अपनी भाषा मे लिखिए।

२—बीज अपनी प्रतिहिंसा की भावना में किस प्रकार सफल हुआ।

३—प्रस्तुत पाठ से आप कौन सी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं ?

४—राय कृष्णदास का एक संक्षिप्त परिचय लिखिए और उनकी शैली सम्बन्धी प्रधान विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।

५—निम्नांकित अवतरणों की व्याख्या कीजिए:—

(अ) प्रकृति बाजीगरनी ........पसारने लगी।

(ब) मेरी बहिर्मुखी.. ......हो उठी।

(स) मैंने कहा ठीक है........तितर-बितर हो जायगी।

## १—झण्डा

[ लेखक—आचार्य चतुरसेन शास्त्री ]

आप दिल्ली के निवासी हैं। आपका जन्म १८८८ ई० मे हुआ था। हिंदी के आधुनिक कहानी लेखको, और निबधकारो मे आपने विशेष रूप से ख्याति प्राप्त की है। आपकी ऐतिहासिक कहानियो की हिन्दी के कहानी-जगत मे विशेष प्रतिष्टा है।

आप मे चतुर्मुखी प्रतिभा है। आपने कहानी, उपन्यास, निबध, और एकाकी नाटक भी लिखे हैं। आप सामाजिक विषयो का चित्रण करने मे सिद्धहस्त हैं। वैद्यक पर भी आपने कई ग्रन्थ लिखे हैं। आप एक अनुभवी और कुशल वैद्य भी हैं।

आपकी शैली बडी प्रभावोत्पादक है। शब्दो मे अपनी इच्छा के अनुरूप भाव उत्पन्न करना आप खूब जानते हैं। इसीलिए आप लौह लेखनी के धनी भी कहलाते हैं। शैली की ही भॉति आपकी भाषा भी भावोत्तेजक और चमत्कारपूर्ण होती है। कहीं-कहीं आपकी भाषा मे कवित्व का आनन्द आता है। आप सस्कृत के तत्सम शब्दो का अधिक प्रयोग करते हैं, किन्तु आवश्यकतानुसार उर्दू के प्रचलित शब्दो का प्रयोग करने मे भी संकोच नही करते।

आपने कई पुस्तके लिखी हैं, जिनमे अमर-अभिलाषा, सिहगढ़ विजय, और खवास का विवाह इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं।

( १ )

**मारवाड़ का सौंदर्य दुनिया से निराला है। प्रकृति ने उसे वीरता का बाना पहनाया है। गरमी की ऋतु थी, वैशाख बीत**

रहा था। खेतों मे पके हुये सुनहरे गेहूँ और जौ लहरा रहे थे। किसान और किसान-पत्नियाँ गीत गाती हुई, हवा के झोको से अठखेलियाँ करती हुई खेतों में जुटो थी। बहुत से खेत कट गये थे, अन्न-राशि को सम्मुख पड़ा देख किसान आशा और आनंद मे मस्त हो रहे थे। उनके कठोर परिश्रम की बूँदे सोने का ढेर बन गई थीं। पृथ्वी पर मारवाड़ के किसान के बराबर कौन परिश्रम करता होगा? जहाँ पानी की एक बूँद मोती के बराबर कीमती है।

खेतो की बगल मे नंगी और दुगम अरावली की ऊँची पहाड़ियाँ वीर की भाँति अचल खड़ी थीं। उनपर चरवाहों की बकरियो के झुंड-के-झुंड बड़ी-बड़ी घासो में चर रहे थे। चरवाहो की बालाएँ अपने गहरे लाल रंग के घाँघरों और गोटदार लूगड़ियो को हवा मे फड़फड़ा कर दूर खेतो में काम करने वाले युवकों को मानों कोई नैसर्गिक सन्देश भेज रही थीं।

बादशाह आलमगीर मर चुका था। उसके बड़े बेटे मुअज्जम ने अपने दोनों सहोदर भाइयो की हत्या करके डगमगाते तख्तेताऊस पर अपना जरा-जीर्ण पग रक्खा था। मारवाड़ के प्रतापी महाराज जसवंतसिंह के पुत्र अजीतसिंह ने आलमगीर की मृत्यु का सुयोग पाकर, बाघ की भाँति आक्रमण करके जोधपुर मुगलो से छीन लिया था। अठारह वर्षों से दलित और छिन्न-भिन्न राठौर संगठित होकर अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। उजड़ा हुआ देश धीरे-धीरे कृषि और वनिज व्यापार में लग गया था। भयभीत साहूकारों ने अपने हाथों को बाजार में पसार दिया था। जीवन की झलक मुरझाए हुए मारवाड़ में फैल गई थी। राठौर कुलवधुएँ उल्लास से गीत गातीं, पानी भरतीं, अन्न

जाती, हँसतीं और ठिठोली करती नजर आने लगी थीं। मार-वाड़ के जीवन मे वसंतोदय हुआ था।

वसंतोदय में जैसे हठात् लूओ का एक झोका आ जाय, उसी भाँति मुगल-सैन्य ने एकाएक मारवाड़ को आक्रांत कर लिया। नए बादशाह ने अजीतसिंह पर क्रुद्ध हो अपने साले मिर्जा मुजफ्फरबेग को पचास हजार सैन्य देकर फिर से मार-वाड़ को आक्रांत करने भेजा था। मारवाड़ का उल्लास विक-सित होते ही छिन्न-भिन्न हो गया। अधकटे खेत मुगल-सैनिको के घोड़ो ने रौंद दिए। अन्न की राशियाँ देखते-देखते लूट ली गईं। गाँव जला डाले गए। आतंक और भय से एक बार मार-वाड़ फिर विचलित हो गया। राठौर-युवक अपने खेतों को उजड़ा और अपने घरो को धायँ-धायँ जलता छोड़ कर मुट्ठी मे कसकर तलवार पकड़ ढाल कंधे पर डाल रोष से होंठ चबाते जोधपुर-दुर्ग की ओर चल दिए।

( २ )

जोधपुर के दक्षिण ओर के विस्तृत मैदान मे छः हजार राठौर घोड़ों पर सवार, मूछे मरोड़े, बाँके साफे सिरो मे बाँधे नंगी तलवार हाथ मे लिए, लाल-लाल आँखे किए, चुपचाप पंक्ति-बद्ध खड़े सेना-नायक की आज्ञा की बाट जोह रहे थे। वे पेट के लिए सिपाही का बाना पहननेवाले सिपाही न थे, अपने स्त्री-बच्चों के अपमान और देश की बरबादी से क्रुद्ध, स्वतंत्र-प्रकृति राजपूत थे। प्रत्येक के नेत्रों से ज्वाला की लपटें निकल रही थी, और संपुटित होठो से जूझ मरने के इरादे प्रकट हो रहे थे। इस समस्त सेना का नायक एक नवयुवक राठौर था। उसकी आयु बाइस वर्ष के लगभग थी। वह एक चपल,

सफेद अरबी घोड़े पर सवार, बिजली की भाँति सैन्य-निरीक्षण करता दौड़ रहा था। उसका स्वर्ण-कवच प्रभात की सुनहरी धूप मे चमचमा रहा था। उसका सुंदर, गौर वर्ण, उन्नत ललाट चमकीली आँखें उसका महत्त्व प्रकट कर रही थीं। राठौर-वीर अधीर होकर आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे। सामने विपुल मुगल-सैन्य थी। उस सेना मे कुछ तोपें भी थीं, जो पुर्तगीज गोलंदाजों के हाथ मे थी। अनगिनत हाथी कज्जल के पर्वत की भाँति खड़े थे। दोनो सेनाएँ युद्ध को सन्नद्ध खड़ी थीं।

नवयुवक राठौर-सेनापति का नाम जुझारसिंह था। वह प्रख्यात वीर दुर्गादास का पुत्र था। सब सेना का निरीक्षण करने के बाद वह एक ऊँचे स्थान पर जाकर खड़ा हो गया। सेनानायक उसकी बगल मे आ खड़े हुए। उसने गंभीर स्वर में कहा—"वीर राठौरो, ये हमारे देश के शत्रु हमारे सामने खड़े हैं। इन्होने हमारे पके हुए खेत रौंद डाले है, अन्न की राशियाँ जला डाली हैं, हमारे घर जला दिए हैं, स्त्रियों को अपमानित और बच्चों को कत्ल किया है। देखो, ये गुनहगार हमारे सामने हैं; हमारे हाथ मे तलवार है, सावधान रहो, इनमें से एक भी बचकर भागने न पाए। आज हम बकरों की भाँति इनका वध करेंगे।"

समस्त सैन्य एक गंभीर नाद से गूंज उठी। युवक ने तलवार ऊँची की, फिर सन्नाटा हो गया। युवक ने गरजकर कहा—"वीरो, वे बहुत अधिक हैं, और हम बहुत कम, परंतु हम राठौर बाघ हैं, बाघ बकरियों के झुंड से भय नहीं खाते। देखो, जोधपुर की प्राचीर पर वह राठौरों का झंडा फहरा रहा है, उसके निकट हमारे महाराज मरुधरधराधीश हमारी प्रतीक्षा

झर रहे हैं। अरे, मरु-देश मे देखो, वह मुगलों का झंडा फहरा रहा है! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, आज उसे छीनकर राठौरो के झंडे के नीचे डाल दूँगा। मै आज महाराजा अजीतसिंह को मुगलो का यह झंडा भेंट दूँगा। कौन मेरे साथ आगे बढ़ेगा, वह वीर अपनी तलवार नंगी कर ले।"

सहस्रो तलवारें झनझना उठी। युवक ने कुछ क्षण सेना-नायको को आदेश दिया, और फिर जोर से बिगुल बजा दिया। सैन्य वीर-दर्प से आगे बढ़ी, जुझाऊ बाजे बजने लगे। क्षण-भर बाद दोनों दल भिड़ गए। तोपे आग उगलने लगीं। बाण पर वाले काल-सर्प की भाँति सनसनाने लगे। तलवारें खटखटाने लगीं। घाव खा-खाकर योद्धा चीत्कार करके धरती पर गिरने लगे। अन्य वीर रण-मद में मत्त हो होकर उन्हे रौंदते हुए बढ़-कर काट करने लगे।

( ३ )

जुझारसिंह ने शत्रु के वाम पक्ष का भेदन कर दिया। वह अपने एक हजार दुर्द्धर्ष रणमत्त वीरों को लेकर मुगल सैन्य को चीरता हुआ उस बहुमूल्य झंडे के निकट पहुँच गया। झंडा हाथी पर था, और उसकी रक्षा तीन हजार मुगल-वीर कर रहे थे। उनके बीच एक बड़े हाथी पर फौलादी हौदे में मुजफ्फर-बेग बैठा सैन्य-संचालन कर रहा था। मृत्यु खुला खेल खेल रही थी; युवक बहुत आगे बढ़ गया। उसने एक छलाँग मे महा-वत को मार गिराया। दूसरी उछाल में झण्डा उसके हाथ में था। वह कीमती रेशम का था, उस पर मोतियों की झालर टँकी थी।

झंडे को एक बार नीचे गिरा और फिर उसे दाएँ-बाएँ घुमा कर, उसने जोर से चिल्लाकर, वीर राठौरो को पुकार कर कहा

"मेरे वीर साथियो, लो यह नया खिलौना तुमने जीत लिया।" वह विजय के उल्लास में खिलखिला-कर हँस पड़ा। इसके बाद उसने गरजकर कहा—"इसे मैं जोधपुर के दुर्ग मे ले जाकर महाराज के चरणों मे डाल दूँगा।"

मुजफ्फरबेग क्रोध से थर-थर काँपने लगा। उसने चीत्कार करके कहा—"इससे पहले ही तेरे टुकड़े कर दिए जायँगे, और यह जोधपुर का किला तोपों से मिस्मार करके ढेर कर दिया जायगा।" उसने भीम वेग से आक्रमण करने के लिये मुगल-वीरों को ललकारा। राठौर-वीर अपने सेनापति से दूर रह गए थे। वह शत्रुओं से घिर गया था। क्षण-क्षण पर चारो ओर शत्रु बढ़ते जा रहे थे। वह अपने इने-गिने साथियों-सहित काल की भाँति युद्ध कर रहा था।

राठौर भी उसी स्थल पर जुटने लगे। वह स्थान लोथों से पट गया। राठौरों को शत्रुओ का भेदन करके अपने सेना-नायक के निकट जाना अनिवार्य था। प्रत्येक राठौर दो-दो तलवारें चला रहा था। मुजफ्फरबेग सेना को उत्साहित कर रहा था। एक बार अवसर पाकर युवक ने मुजफ्फरबेग पर भाले का वार किया। मुजफ्फरबेग न सँभल सकने से हाथी पर से झूमकर गिर गया और उसके साथ ही वीर युवक राठौर भी। दोनों शत्रु गुथ गए थे। युवक के शरीर पर अगणित घाव थे। उसकी मुट्ठी में मुगलों का छीना हुआ झण्डा था।

## ( ४ )

सेनापति के गिरते ही मुगल सेना के पैर उखड़ गए। सुअवसर पाते ही राठौर-वीरों ने उन्हें गाजर-मूली की भाँति काटना आरम्भ कर दिया। तलवारों की टक्कर से, गिरते हुए आदमियों

की चीत्कार से, घोड़ो की उछल-कूद और हिनहिनाहट से, तोपों के गर्जन से वायु-मंडल गूँज उठा। प्रत्येक वीर अंधाधुंध लड़ रहा था। भागती हुई मुगल-सेना गाजर-मूली की भाँति कट रही थी। जुझारसिंह ने जमीन पर पड़े-पड़े चिल्लाकर कहा—"मारवाड़ की जय! रणबंका राठौर की जय।"

एक बार वीर-दर्प से मुट्ठी-भर राजपूत फिर मेघ की भाँति उठे। वे सिमटकर अपने सरदार के चारो ओर इकट्ठे हो गये। गोगूद का माहौरसिंह; जिसने प्रबल पराक्रम दिखा, किसी भी बाधा की परवा न कर, उसका साथ नही छोड़ा था, स्वयं अत्यंत घायल होने पर भी, उसकी रक्षा कर रहा था।

राव भगवानदास हरावल मे थे। उनके सामने का मैदान बिलकुल खाली हो गया था। वह तीर की भाँति युवक सरदार के निकट आए। उन्होंने सरदार की पगड़ी को जरा उकसाकर उसका सिर अपने घुटने पर रक्खा, और रक्त से लथपथ उसके दोनों हाथ अपने हाथो मे लेकर—"वीर, तुम्हारी माता धन्य है; मारवाड़ को तुम पर गर्व है, परंतु इसी आयु मे तुम इस वीर गति को पहुँचे! अभी तो व्याह की मेहँदी की लाली भी वैसी ही बनी हुई है।"

युवक सरदार के होठो पर मुस्कान आई। उसने कंपित स्वर से कहा—"इससे अच्छा और क्या हो सकता था ठाकराँ।" इसके बाद उसने कष्ट से साँस लेकर कहा—"मै मृत्यु के निकट हूँ, किंतु उनसे मत कहना।" उसने युद्ध करती हुई राठौरों की सेना की ओर दृष्टि फेरकर कहा—"युद्ध समाप्त होने तक मेरे शरीर को किसी गढ़े मे छिपाकर आप लोग युद्ध कीजिए। मेरे वीरों को उत्साहित कीजिए। विजय हमारी होगी।" फिर उसने पास पड़े हुए मुगल सेनापति की ओर देखकर गंभीर स्वर मे

कहा—"इस गीदड़ को बाँध लो। इसे और इस झंडे को भी महाराज के सामने ले जाकर निवेदन करना कि इन्हें एक मरे हुए आदमी ने जीता है, जिसके वंश मे विस्तर पर मरने की अपेक्षा युद्ध-भूमि मे मरने मे ही प्रतिष्ठा समझी जाती है।" एक बार उसके सूखे मुख-मंडल पर भीनी मुस्कुराहट दौड़ गई, और उसकी आँखें फैल गईं। उसकी आवाज क्षीण होने लगी। उसका सिर अब भी राव भगवानदास के घुटने पर था। चारो तरफ सैनिक चुपचाप खड़े थे। ऊपर आकाश मे सूर्य तेज बखेर रहा था। घाटी में ताजी वायु झकझोरे ले रही थी। अब भी चारों तरफ घमासान युद्ध हो रहा था। यद्यपि मुगल-सैन्य के पैर उखड़ गये थे, उसका व्यूह बिगड़ चुका था, तथापि कुछ टुकड़ियाँ जहाँ-तहाँ लोहा ले रही थीं। तलवारो की झनझनाहट और घायलो की चीत्कार कानों के पर्दे फाड़ रही थी। राठौर-वीर जय-जयकार से दिशाओं को कंपायमान कर रहे थे।

मुमूर्षु वीर का मुख एकाएक देदीप्यमान हो गया। वह अपनी कुहनी का सहारा लेकर बैठ गया। उसने पूरा जोर लगा कर कहा—"जय, मारवाड़ की जय, राठौर-वीरों की जय!"

मालूम होता था, वह इसी शब्द को अंतिम बार कहना चाहता है। वह कटे वृक्ष की भाँति भगवानदास की गोद में गिर पड़ा।

वीरों ने उसके कथनानुसार नाले में उसका शरीर छिपा दिया, और तलवारें खींच-खींचकर युद्ध करने लगे। इस समय उस जीते हुए झंडे के आस-पास युद्ध होने लगा। एक मुगल-सरदार ने वीर भगवानदास को द्वंद्व के लिए ललकारा। दोनों वीर भिड़ गए, परंतु कुछ ही क्षणों में मैदान खाली होने लगा। थोड़े-से बचे राठौर-वीर राव भगवानदास के चारों ओर विजय

की बधाई देने को एकत्र हो गए। उनके बीच में बंदी मुगल-सरदार सेनापति और वह बहुमूल्य झंडा था।

( ५ )

सूर्यास्त हो रहा था। राठौर-वीर बंदियों को साथ लेकर धीरे-धीरे जोधपुर-दुर्ग में प्रविष्ट हो रहे थे। सबके बीच मे चार योद्धाओ के कंधे पर युवक सेनापति जुझारसिंह का शांत देह था। उसके चारों ओर वीरों ने नंगी तलवारो का छत्र बनाया था, और उसके आगे-आगे बहुमूल्य विजित झंडा ले जाया जा रहा था।

( ६ )

जोधपुर-दुर्ग के बाहर दक्षिण-कूल पर, जहाँ लूनी नदी अपने क्षीण कलेवर मे क्रुद्धा सर्पिणी की भाँति चपेट खाती बह रही है, वही वीर जुझारसिंह की सफेद पत्थर की छतरी है। वहाँ वह वीर चिर-निद्रा मे सो रहा है। नगर के चरवाहों के लड़के वहाँ के वृक्षों की शीतल छाया मे बैठकर लूनी के मोती से जल की लहरों पर दृष्टि दिए अपने बाप-दादों से सुनी हुई जुझारसिंह की वीर-गाथा अपनी साथिनी बालिकाओं को सुनाया करते है। और, जब वे कहते हैं कि वह वीर यहाँ सो रहा है, तो भोली बालाएँ कौतूहल और विस्मय से उस छतरी की श्वेत पत्थर की पटियों को निहारा करती हैं।

## अभ्यास के लिए

१—लेखक के वर्णन के आधार पर अरावली की प्राकृतिक छटा का वर्णन करो।

२—इस कहानी का कथानक अपने शब्दों में लिखो।

३—इस कहानी का जो उत्कृष्ट पात्र है, उसके गुणो पर प्रकाश डालो।

४—इस कहानी का 'झंडा' शीर्षक क्यों दिया गया ? तुम इसके स्थान पर कोई दूसरा शीर्षक चुनो।

५—भावार्थ स्पष्ट करो।

मुमूर्षु..............हो गया।

# १०—दीपावली तथा मिट्टी की मूर्तियाँ

[ लेखक—श्री वासुदेव उपाध्याय ]

आपका जन्म सन् १९०७ मे बलिया मे हुआ। आपने काशी विश्व-विद्यालय से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की है। आप इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं। भारत की प्राचीन सस्कृति और सभ्यता के प्रति आपका अधिक आकर्षण है। इस दिशा मे आपने महत्त्वपूर्ण अन्वेषण कार्य किये हैं। आप पहले कुछ दिनों तक गवर्नमेंट सेंट्रल लाइब्रेरी मे लाइब्रेरियन के पद पर रहे, फिर प्रयाग मे लीडर प्रेस मे काम करते रहे, यहाँ पर इन्होने कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना मे की।

इतिहास और अनुसंधान सम्बन्धी आपके कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। आपको एक ऐतिहासिक ग्रन्थ पर, जिसका नाम गुप्त साम्राज्य का इतिहास है, अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से बारह सौ रुपये का मगला प्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हो चुका है। आपके शेष ग्रन्थों मे विजय नगर साम्राज्य का इतिहास और भारतीय सिक्के अधिक प्रसिद्ध हैं।

आपकी भाषा विषय के ही अनुरूप सरल, और सुस्पष्ट है। आप शुद्ध हिन्दी के पक्षपाती हैं। भाषा मे प्रवाह और गतिशीलता है। शुद्ध हिन्दी के सरल शब्द आपकी भाषा मे अधिक ओजमय ज्ञात होते हैं।

शैली वर्णनात्मक है, जो अपने विषय के लिए अधिक उपयुक्त है। उसमे व्यजकता और प्रभावोत्पादकता के गुण पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होते हैं।

दीपावली के त्यौहार पर प्रायः सभी लोग मिट्टी की मूर्तियाँ खरीदते है। उनमे पूजा के निमित्त तथा बालकों के खेलने के लिए भी मूर्तियाँ रहती है। परन्तु कम लोगो ने इस विषय पर ध्यान दिया होगा कि उन मूर्तियो का समाज में क्या महत्व है तथा उनका इतिहास से क्या सम्बन्ध है। प्राचीन भारतीय मिट्टी की मूर्तियो के अध्ययन से पता चलता है कि समाज में उनका विशेष स्थान है। आधुनिक मूर्तियो के सदृश प्राचीन काल में मिट्टी से नाना प्रकार की आकृति तैयार की जाती थीं जिन्हें विभिन्न समय तथा स्थान पर प्रयुक्त किया जाता था। त्यौहार पर उनकी पूजा भी होती थी तथा लड़के उन्हे खिलौने के रूप मे प्रयोग करते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि मिट्टी की मूर्तियाँ न केवल, पूजा तथा मनोरंजन की साधन थीं वरन् भारतीय सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक समस्या को सुलझाती रहीं। आज भी प्राचीन भारत के समाज तथा सभ्यता पर उनके द्वारा पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। दीपावली के अवसर पर आधुनिक मिट्टी की मूर्तियों से संतोष न कर भारतीय परंपरा तथा संस्कृति पर प्रकाश डालने वाली मृण्मयी मूर्तियों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक प्रतीत होता है।

## मिट्टी की मूर्तियों का इतिहास

इतिहास के जानने वालो से यह बात छिपी नही है कि ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व सिंध प्रांत मे सभ्यता की पराकाष्ठा मिलती है। उस काल के लोगों ने भी प्रतिदिन काम में आने वाली वस्तुओ को सौंदर्य तथा कलामय निर्मित किया है। सिंध प्रांत मे मोहंजदड़ो नामक स्थान मे भी मिट्टी की मूर्तियाँ मिलती हैं जो पूजा तथा बच्चों के खिलौने के लिए प्रयोग की जाती रहीं। मातृ देवी की अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। मनुष्य की

मूर्तियाँ प्राय. खड़ी तथा नग्न मिलती है। कमर के नीचे केवल एक छोटी धोती पहनी जाती थी और कभी उस पर एक मेखला भी पड़ी रहती थी। कुछ पर पंखे की तरह शिरोवस्त्र है तो कुछ मूर्तियो के कानो की ओर प्याले जैसी वस्तुएँ है। इन प्यालो मे घी या तेल की बत्ती जलाई जाती थी, जैसा आजकल गुजरिया के सिर पर कई-छोटे दीपक बनाए रहते हैं। उसके पश्चात् सहस्त्र वर्षों का इतिहास प्रकाश मे न आने के कारण सिंध प्रांत की मूर्तियो के बाद मौर्य कालीन मिट्टी की आकृति पाई जाती है। इसे ईसा पूर्व चार सौ से डेढ़ सौ वर्ष तक विस्तृत मान सकते है। मौर्यकालीन मृण्मयी मूर्तियाँ अपनी विशेषता रखती है। उनकी बनावट ग्रामीण है तथा कलापूर्ण नही है। प्रत्येक अग को पृथक्-पृथक् तैयार कर जोड़ने से सारी मूर्ति तैयार की जाती थी। परन्तु शुङ्ग काल मे इसकी बनावट में सुन्दरता आ गई और कलाकार सतर्क हो कर मिट्टी के मूर्तियो को तैयार करने लगे। मूर्तियो के विषय मे कोई खास परिवर्तन न आ सका। कुषाण काल (ईसा पूर्व ७० से लेकर ई० सं० ३२० तक) मे जब मथुरा कला का जन्म हुआ और कला अपनी चरम सीमा को पहुँच गई वही परंपरा पाँचवीं सदी तक भारत मे पाई जाती है। कलाविदो का ध्यान छोटी से छोटी वस्तुओ पर भी आ गया और शिक्षित कला के अनुसार मिट्टी की मूर्तियाँ बनने लगी। चौथी शताब्दी से बृहत् पैमाने पर मिट्टी की मूर्तियाँ बनने लगी। दो सौ वर्षों का समय कला के लिए स्वर्ण युग था। सभी क्षेत्रो में जागृति हुई और उन्नति के शिखर पर सभ्यता पहुँच गई थी। मथुरा, सारनाथ तथा पाटलिपुत्र मे मूर्तियो का निर्माण असंख्य रूप मे हुआ। मृण्मयी मूर्तियाँ भी गुप्तकालीन तक्षण कला मे विशेष स्थान रखती है। वैसाली तथा राजघाट (काशी) की खुदाई मे तत्कालीन मूर्तियो का ढेर

मिला है। यह परंपरा मध्यकाल तक चलती रही। कहने का सारांश यह है कि मोहंजोदड़ो से (ईसा पूर्व तीन हजार वर्ष) लेकर सातवीं सदी तक भारत में मिट्टी की मूर्तियों का इतिहास तथा उदाहरण पाये जाते है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो मिट्टी की मूर्तियाँ आज दीपावली पर खरीदी जा रही हैं उनका इतिहास पुराना है। यही नहीं, भारत के बाहर मध्य एशिया में भी वैसी मूर्तियाँ मिली हैं जिससे बृहत्तर भारत मे भी उनका प्रचार सिद्ध होता है।

## मूर्तियों का विषय

उन मृण्मूर्तियों की परीक्षा से साफ तौर से मालूम हो जाता है कि उन्हें विभिन्न उद्देश्य तथा प्रयोग के लिये तैयार किया जाता था। सबसे पुराने समय में भद्दी मूर्तियाँ बच्चों के खिलौने का काम देती थीं। खिलौना का कार्य तो सदा चलता रहा। कोई काल क्यो न हो, उस समय मनोरंजन के लिये खिलौने मिट्टी से तैयार किये जाते थे। खेल के अतिरिक्त पूजा का ध्येय भी सामने था। धार्मिक भाव को लेकर कलाकर मृण्मूर्तियाँ बनाता था। मोहंजोदड़ो में धरती माता प्रसिद्ध देवी थीं जिनकी मिट्टी की मूर्ति अधिकतर सिंध प्रांत में पाई जाती है। मन्दिर की प्रस्तर मूर्तियों का अनुकरण मिट्टी में भी किया गया। धरती माता, बुद्ध का सिर तथा हिंदू देवी देवता को सर्वत्र स्थान दिया गया था। राजघाट (काशी) से हिंदू देवताओं की अनेक मृण्मूर्तियाँ मिली है। तीसरा ध्येय व्यापार का था, जिसके लिए अनगिनत सुंदर मूर्तियाँ तैयार की जाती थीं जैसा आजकल के कुम्हार दीपावली के अवसर पर करते हैं। जनसाधारण मिट्टी की सुंदर मूर्तियों को खरीदते हैं। पुराने समय में स्त्री, पुरुष, जानवर (पक्षी तथा पशु) तथा अन्य साधारण आकृति को सुंदरता के साथ तैयार कर बाजारों में बेचने लाया करते थे।

वर्तमान काल की तरह ग्रामीण तथा कलापूर्ण मिट्टी की मूर्तियाँ उस समय मे भी बनती थी और शक्ति के अनुसार निर्धन तथा धनवान व्यक्ति उन्हे खरीद सकता था। स्वभावतः सुंदर मूर्तियाँ महँगी बिकती थी। नवसिखिए अथवा ग्रामीण कलाकार भद्दी मूर्तियाँ तैयार करते थे, और शिक्षित कलाविद सुंदर तथा आकर्षक मूर्ति बनाता था। यह कोई आवश्यक न था कि देव-ताओ की मूर्तियाँ पूजा निमत्त सुंदर बनाई जायें वरन् चिड़िया, रथ, हाथी, घोड़े, कुत्ते आदि पशुओ की आकृतियाँ भी सुंदर मिली है। विषय को न देख कर, कला प्रेमी व्यक्ति के हाथ सौंदर्यपूर्ण मूर्तियाँ बन जाती थीं। उन सबको धार्मिक तथा सामाजिक विभाग मे बाँट सकते हैं।

## निर्माण का क्रम

जैसा कहा गया है कि सर्व प्रथम भद्दी मूर्तियाँ ही बना करती थी, जो कला के विकास के साथ सुंदरता को प्राप्त हुई। पहले-पहले गीली मिट्टी से हाथ से अंग पृथक् पृथक् तैयार किए जाते रहे और सब को जोड़ कर एक आकृति बन जाती थी। जैसे लड़के प्रति दिन खिलौने स्वयं बनाया करते है। मौर्य काल से अंगो को जोड़ कर एक कल्पित मूर्ति बनायी जाती, जो मनुष्य की आकृति देख कर तैयार की जाती थी। पशु पक्षी की आकृतियो को उस श्रेणी मे रक्खा जाता है। दूसरे ढंग मे मूर्ति का सिर साँचे मे तैयार कर निचले धड़ मे जोड़ दिया जाने लगा। विद्वानो का मत है कि शुंग काल से मृण्मूर्तियो के लिए साँचे प्रयोग मे आने लगे, जो उन मूर्तियो को देखने से साफ प्रकट हो जाता है। खिलौनों की मूर्तियो मे पैर के समीप छिद्र बना रहता था जिससे रस्सी लगा कर खीचा जा सके। गुप्त कालीन मृण्मयी मूर्तियों मे पूर्ण रूप से साँचे का प्रयोग

मिलता है। तक्षशिला की खुदाई मे ऐसे साँचे मिले हैं। मथुरा तथा राजघाट की मूर्तियाँ सर्वथा साँचे मे ढाल कर तैयार की गई हैं। गुप्तकाल में विष्णु, सूर्य, कार्तिकेय, दुर्गा, गंगा तथा यमुना की मूर्तियाँ मिली है। इस प्रकार साँचे का प्रयोग बनावट के क्रम में अंतिम समझा जाता है। आजकल भी मिट्टी की मूर्तियाँ साँचे में ढाल कर बनायी जाती है, जो प्राचीन भारत के ढंग को स्मरण दिलाती हैं।

## सांस्कृतिक इतिहास के साधन

यह कहा जा चुका है कि कला की दृष्टि से मृण्मयी मूर्तियाँ आमोद-प्रमोद के साधन तथा धार्मिक अवस्था के प्रतीक थी। इतना होते हुये भी मिट्टी की मूर्तियों की सजावट, वस्त्र तथा आभूषण तत्कालीन सभ्यता के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। यह सही है कि सर्व प्रथम वे ग्रामीण कला के द्योतक हैं। उस समय नग्न मूर्तियाँ भी खिलौने के लिये बनती रहीं परंतु वस्त्र का प्रयोग मोहंजोदड़ो से ही मिलता है। भारतवर्ष में आज से पाँच हजार वर्ष पहले सब लोग वस्त्र धारण करते थे। कालांतर मे कला के अभ्युदय के साथ उनकी बनावट में विकास आ गया जो उस समय की कला के प्रतीक माने जा सकते हैं। कला की सभी बातें इनमे भी पायी जाती हैं। बुद्ध के सिर पर पगड़ी तथा बाल की विभिन्नता इनसे प्रकट हो जाती है। वस्त्र तथा पगड़ी के विभिन्न प्रकार का ज्ञान इन मिट्टी की मूर्तियों से किया जाता है। उनसे आभूषण के शृंगार शैली का पता लगता है। इस तरह सामाजिक बातों की जानकारी में मूर्तियों से पर्याप्त सहायता मिलती है। आज दीपावली के अवसर पर इन मिट्टी की मूर्तियों से संबंधित भारतीय सभ्यता के इतिहास को जानकर किस भारतीय को गर्व न होगा। [भारत की प्रत्येक परंपरा मे जाति का इतिहास तथा संस्कृति की बातें छिपी हैं।]

## अभ्यास के लिये

१—प्रमाणित करो, कि मूर्तियो से समाज तथा सभ्यता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

२—प्राचीन काल की मूर्तियो के सम्बन्ध मे तुम्हे क्या ज्ञात है?

३—प्राचीन काल की मूर्तियो के निर्माण का क्रम-इतिहास बताओ।

४—इस पाठ मे जो संज्ञा सूचक शब्द आये हैं, उनके सूक्ष्म परिचय दो।

५—सस्कृति से सास्कृतिक बना है। इसी कोटि के और शब्द बनाओ, और उनके बनने के नियम भी बताओ।

---

# ११—मेरी चोरी

[ लेखक—श्रीयुत गुलाब राय एम० ए० ]

श्री गुलाब राय जी हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं आलोचक हैं। आप मैनपुरी, उत्तर प्रदेश के निवासी हैं। कई वर्ष महाराज छतरपुर के प्राइवेट सेक्रेटरी रह चुकने पर आपने पेन्शन ग्रहण की। आज कल आप सेंट जान्स कालेज, आगरा में हिन्दी के अध्यापक हैं और इस पद पर रहते हुये साहित्य-सदेश मासिक पत्र का संपादन भी कर चुके हैं। आप को दर्शन शास्त्र एवं साहित्य दोनों पर समान अधिकार प्राप्त है। 'नवरस' ग्रन्थ एव हास्य रस पर लिखे हुये भावपूर्ण निबन्ध आपकी साहित्यिक मर्मज्ञता का पूर्ण परिचय देते हैं, और 'तर्क शास्त्र' 'कर्त्तव्य शास्त्र' तथा 'फिर निराशा क्यो' इत्यादि प्रकाशित दर्शन ग्रन्थ भी अत्यन्त प्रशसनीय हैं।

प्रबन्ध प्रभाकर, हिन्दी नाट्य विमर्श, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, प्रसाद की कला तथा सिद्धांत और अध्ययन इनके उत्कृष्ट आलोचनात्मक ग्रन्थ हैं।

आपके लेख गम्भीर और विचारपूर्ण होते हैं। शैली भावात्मक और विचारात्मक है। विचारात्मक शैली के निबन्ध लेखकों में आपका प्रमुखस्थान है। शैली की भांति भाषा भी आपकी दो प्रकार की है। एक तो अधिक संस्कृतनिष्ठ है, दूसरी में संस्कृत के साथ ही साथ यत्र-तत्र उर्दू और अंग्रेजी के भी शब्द हैं। दूसरी प्रकार की भाषा में मुहाविरों की छटा भी देखने को मिलती है।

चोरी चित्त की भी होती है, और वित्त की भी। यद्यपि साहित्यिक लोग चित्त की चोरी को अधिक महत्ता देते हैं, तथापि मैं

आपको वित्त की ही बात सुनाऊँगा। लेकिन घबराइये नहीं, ऐसी बात नहीं कहूँगा, जिसमें आपको दिल थामने की जरूरत पड़े। अपनी करुणा का उद्रेक फिर कभी के लिए सुरक्षित रखिये।

मेरा नुकसान तो थोड़ा नहीं था, मुर्गी के लिये तकुए का ही घाव बहुत होता है; किंतु उस पर संमोहन-कला-विशारद, परम भिषगाचार्य कालदेव के जादू-भरे हाथ का सर्व-संकटहरण स्पर्श हो चुका है। यह बात इतनी पुरानी हो गई है कि उसका सन् संवत् भी भूल चुका हूँ। शायद सन् १९२७-२८ का जमाना था। तब तक मैं अनाथ नहीं हुआ था। मेरे माता-पिता जिंदा थे। वैसे भी मैं नौकरी की नाथ से नथा हुआ था। उन दिनों मैं छतरपुर-राज्य के निजी अमात्य ( Private Secretary ) के गौरवान्वित पद को अपने अकार्य-कुशल अस्तित्व से लज्जित कर रहा था। मालूम नहीं, कालिदास ने किस भावना से प्रेरित होकर मेघदूत लिखा था, किंतु मेरा अनुमान है कि वह किसी राज्य मे नौकर होंगे, और, उन्हें छुट्टी न मिली होगी, तभी उनके कवि-हृदय में मेघ को दूत बनाकर अलकापुरी नहीं, तो काश्मीर ( जहाँ के वह रहने वाले बतलाये जाते हैं ) भेजने की कल्पना जाग्रत हुई होगी।

मेरे आश्रयदाता स्वर्गीय हिजहाइनेस राजर्षि सर विश्वनाथ सिंहजू देव बड़े उदार थे, लेकिन छुट्टी देने में बड़े कृपण भी थे। और चीजें तो बिना माँगे ही मिल जाती थी, क्योंकि मेरा संकल्प था कि सिवा छुट्टी के और कुछ न माँगूँगा, किंतु मौत की भाँति छुट्टी माँगे पर भी नहीं मिलती थी। नौकरी के स्वर्ण-पिंजर में बंद कीर-सी मेरी स्वच्छंद आत्मा विवशता से छटपटाया करती।

मेरे जीवन में वह अवस्था आ चुकी थी जब क्षुद्र नदी की भाँति खल लोग बौरा उठते हैं, और उनके हृदय मे वैभव और विलास की इच्छा होने लगती है। जलेसर के मकान के लिये

थोड़ा कर्जा लिया था, वह अदा हो चुका था। बुंदेलखंड ऐसी फ़िज़ूल-खर्ची जगह है कि वहाँ धन-संग्रह करने के लिये बेईमानी की भी जरूरत नही पड़ती। कुछ वणिक्-जाति की स्वाभाविक व्यवसाय-बुद्धि कुछ स्त्री के आभूपण प्रेम और कुछ कन्या के विवाह की दूरदर्शिता से मैंने पूरे पैंतालीस तोला सोना खरीद लिया था; चार-पाँच सौ रुपया भी पास-बुक में था। हृदय में जवानी की उमङ्ग थी। जब छतरपुर मे बहुत से अँगरेज दंपतियों को सैर के लिये आते देखता था, तब मै भी सोचने लगता था कि मैंने ही कौन-से राम के बैल मारे है, जो इस सुख से वंचित रहूँ। महाराज के साथ बहुत सैर की थी, किंतु उसमें सपरिवार सैर का सुख और गौरव कहाँ? दूसरे की अधीनता में सुख का उपभोग आत्मभाव की तुष्टि नही करता। महाराज के साथ की सैर महाराज़ के लिये सैर थी, किंतु मेरे लिये घोर-कठोर कर्त्तव्य था। अस्तु।

ठाट-बाट के साथ सपरिवार बाहर जाने का सुअवसर देखने लगा। मेरठ से मेरी धर्मपत्नी की भतीजी की शादी का निमन्त्रण आया। वह उपेक्षणीय न था। यद्यपि काम के नाम तो मैं फली भी न फोड़ता, तथापि मेरी उपस्थिति वहाँ अत्यंत वांछनीय थी।

छुट्टी के लिये खींच-तान होने लगी। महाराजा साहब के सभी कर्म उसी मुहूर्त के लिये रुके हुए-से जान पड़े।

नरेशों की चाकराधीनता; जिसके बल में अपना स्थान सुरक्षित समझा करता था, मुझे अखरने लगी। दीवान साहब पंडित सुखदेव बिहारी मिश्र के मेरे कार्य-भार को अपने ऊपर ले लेने का वचन देने पर ( ऊँचे पदवाले नीचे पदवाले की एवजीदारी बहुत कम करते हैं, किंतु 'कभी नाव लढ़ी पर और कभी लढ़ी

नाव पर' के न्याय से उन्होंने यह कार्य स्वीकार किया था ) मुझे छुट्टी मिली।

"मैं तो "अष्टकपाली दारिद्री जब चाले, तब सिद्ध" का मानने वाला था, किंतु महाराजा साहब सायत के उपासक थे। उन्होंने मेरे लिये भी सायत देखने का कष्ट किया। मेरे लिये चौथा चंद्रमा था, जो यात्रा के लिये अनिष्टकर समझा जाता है। लेकिन स्वतन्त्रता के आवेश में चौथे चंद्रमा की बात तो क्या, आठवें चंद्रमा की बात न मानता। मैंने समझा, मेरे रोकने के लिये बहाना ढूँढ़ा गया है। मै बालक तो न था, किंतु अवस्था के हिसाब से मै महाराज के आगे बालक ही था। मेरे बाल-हठ के सामने महाराज का राज-हठ न चला, क्योंकि मेरी धर्मपत्नी जी मायके जाने की प्रसन्नता मे तिरिया-हठ का सहयोग दे रही थीं।

परमेश्वर के घर तक पहुँचने को अनेको रास्ते हैं किंतु छतरपुर से अपने घर जाने के दो ही रास्ते थे—एक सीधा आगरा होकर, और दूसरा कुछ फेरफार कर, कानपुर होकर। आगरे का रास्ता 'घर की मुर्गी' की तरह ( मैं मुर्गियाँ नही पालता हूँ ) आकर्षण-हीन हो गया था। नवीनता के उपासक के लिये जब "सैर की दुनियाँ की गाफिल, जिंदगानी फिर कहाँ ? जिंदगानी गर रही, तो नौजवानी फिर कहाँ ?" की उमङ्ग हृत्सागर मे विलोड़ित होने लगी, तो फिर नये मार्ग से जाने का मोह संवरण करना कठिन था। उस मार्ग के एक-एक लाभ वृहदाकार धारण कर मेरे सामने आने लगे। कानपुर के लिये महोबा होकर जाना होगा, आल्हा-ऊदल की वीर भूमि के दर्शन होंगे, इतिहास-प्रसिद्ध कीर्ति सागर देखने को मिलेगा। शायद यदि जाना चाहूँ, तो राम-पद अंकित चित्रकूट की पुण्य भूमि मे त्रयताप शमन करने का सुअवसर मिल जायगा, नहीं तो उधर के पावन समीर का

एक आध-झोंका मिल ही जायगा। कानपुर में पाप प्रक्षालिनी, कलिमल विध्वंसनी, पुण्यतोया भागीरथी के निर्मल सलिल में मज्जन और पान का अलभ्य लाभ मिलेगा। इससे भी बढ़कर एक और बात थी। वह यह कि कानपुर में एक सज्जन रहते थे, जिन पर मेरे चार हजार रुपयों की डिगरी थी, और जिसके इजरा कराने की कानूनी मियाद तीन चौथाई मेरे सौजन्य और दयाभाव के वश और एक चौथाई आलस्य के कारण जाती रही थी, किन्तु मेरी समझ मे इसकी नैतिक मियाद तब भी बाकी थी। उनका पता ठिकाना तो इससे अधिक न मालूम था कि वह घी की दूकान करते हैं, किंतु चलते-फिरते उनके दर्शन होने की दूरस्थ सभावना अवश्य थी। इस विचार मे कुछ अधिक तत्त्व तो न था किन्तु अपने को धोखा देने तथा अपनी फिजूल-खर्ची पर उपयोगिता का आवरण डालने के लिये यह ख्याल अच्छा था। उस मार्ग से जाने मे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-रूपी चारों पदार्थ मेरे करतल होने की संभावना थी। फिर क्या था? 'सब थानन ते श्रेष्ठ अति द्रुतगतिगामिनिकार' का आवाहन हुआ। महोवा की सड़क कुछ खराब थी। वैसे तो उधर जाने के लिए ड्राइवर लोग प्रायः आनाकानी किया करते थे, किंतु मेरे साथ उसका अफसर-मातहती का ही नहीं, वरन् श्रद्धा-भक्ति का भी संबंध होने के कारण चक्रपाणि ड्राइवर ने भी मना नहीं किया। मालूम नहीं, स्वयं विष्णु भगवान ही मुझे काल के गर्त मे लिए जा रहे थे। जाने के लिए मेरा असबाब भी इतना सुडौल बँधा था कि मुझे उस पर गर्व होने लगा। मैं भी अपनी निगाहों में बड़ा जँचने लगा। वक्रतुंड महाकाय का स्मरण कर मोटर पर सवार हुआ, और मारुत-तुल्य वेग से स्टेशन पहुँचा। स्टेशन पर सामान उतरा, और उसके साथ हम लोग भी उतरे। मेरे चाकरराज भी मेरे

साथ थे। उन्होंने भोजननादि की सुबिधा कर दी। रात को सवार होकर सुबह नौ बजे कानपुर पहुँचे। यद्यपि कानपुर में कई जान-पहचान के लोग थे, तथापि उन पर परिवार का भार डालना मैंने नीति-विरुद्ध समझा। सराय और होटल मुसलमानी और अँगरेजी आधिपत्त्य के चिह्न होने के कारण प्राचीनता के धार्मिक संस्कार मे पले हुए मनुष्य के लिये वर्ज्य-से थे। "येषां क्वापि गतिर्नास्ति" ऐसे अशरण लोगों को वाराणसी की भाँति शरण देनेवाली धर्मशाला का आश्रय लिया गया। धर्मशाला के चुनाव मे ब्रह्म-वाक्य और ड्राइवर-वाक्य की भाँति।ताँगेवाले का वाक्य प्रमाण माना गया।

आनंदराय की धर्मशाला मे मनचाहा स्थान मिल गया। उन कमरों में घर का-सा वातावरण था। दीवारो पर किसी रमणी के कर कमलो द्वारा अंकित मांगल्य-सूचक चित्रण से अनुमान होता था कि वहाँ पर किसी का विवाह भी हुआ था। भोजन करके कल्पना-शक्ति कुछ बढ़ जाती है। हाल ही मे हम लोगो ने एक कहानी पढ़ी थी, जिसमें एक सज्जन की रेल में चोरी हो गई थी। चोरी के अनुसंधान मे उन्हे एक महीना स्टेशन पर ही रहना पड़ा था, और उनकी लड़की का विवाह वहाँ के स्टेशन-मास्टर के लड़के से हो गया था। कहानी का चोरी का भाग तो छोड़ दिया, और सोचने लगे, हमारी लड़की के लिये सुयोग्य वर मिल जाय, तो उसका इसी धर्मशाला से विवाह कर सकते है। एक विवाह के लिये हमारे पास ट्रंक मे पर्याप्त धन था। हम भूल गए थे, दीवार के भी कान हुआ करते है। धन का अस्तित्त्व बहुत- सी बातो को भुला देता है, फिर यह तो जरा-सी बात थी। हम लोग शृंगारियो और व्यसनियों की भाँति शाम की प्रतीक्षा करने लगे। पाँच बजते ही ताँगा मँगाया गया। एक ताँगे के लिये हम लोगो की संख्या कुछ अधिक थी; दूसरा ताँगा

मँगाया गया, उसके लिये हम लोगों की संख्या कुछ कम थी। सोचा सुख-दुख के साथी चाकर को भी सैर के लाभ से क्यों वंचित रक्खा जाय। आखिर ताँगे मे जगह छोड़ने की कौन-सी बुद्धिमानी है, उस समय मुझसे कोई यह कहनेवाला न था—"अल्पस्य हेतोर्बहु-हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासित्त्वं मे*।"नौकरी की जी उबानेवाली कार्य-प्रणाली से छुट्टी पाने की प्रसन्नता, स्वतंत्रता के आवेश और सैर के शौक में उन साधारण बातों को भूल गया, जिनका मैं सदा ध्यान रखता था। अपने पसीने की कमाई के घनीभूत सार, मेरे लिये कोहनूर से भी नयनाभिराम और मूल्यवान पैंतालिस तोले के स्वर्ण-खंड को मैं जी-जान से प्यारा तो नहीं, लेकिन किसी परम गोपनीय रहस्य की भाँति सुरक्षित रखता था। छतरपुर मे उसके कारण घर सूना नहीं छोड़ता था। जिस बक्स मे वह रक्खा जाता था, उसका स्पर्श मेरे सर्वतोभद्र और सर्वतोगति विश्वस्त चाकर (उसका नाम भरोस था) के लिए भी वर्ज्य था। हाँ, तो उस द्वादशवर्षीय चाकरी-वारिधि की अमूल्य मणि की रक्षा के लिये नौकर भी न छोड़ा। मेरी धर्मपत्नी के मन मे शंका की क्षीण रेखा आई थी, वह भी बातों के पारावार मे जल की चल लहर और खल की प्रीति की भाँति स्थिर न रह सकी। मेरे कमरे से एक कमरा मिला हुआ था। उसके बीच के किवाड़ों में (देवी जी पर अपनी कर्तव्यशीलता की धाक जमाने के लिये) ताला डाल दिया था। बाहर भी मजबूत ताला डाल दिया। खजाने की प्रहरी की भाँति दो बार इसे खींचकर देख लिया था। इससे अधिक और सावधानी क्या? मेरे कमरे के दोनों ओर कुछ सज्जन, जो दुग्ध-फेन,

---

*अर्थात् थोड़े लाभ के लिये बहुत छोड़नेवाला तो मुझे विचारहीन मालूम पड़ता है।

चंद-ज्योत्स्ना और महात्मा गाँधी के चरित्र तथा यश से भी उज्ज्वल चंद्रमा के किरण-जाल से भी हलके और झीने तथा गंगा जी की प्रातः समीर-प्रेरिता लघु-लघु लहरियो से उर्मिला (चुन्नटदार) सफेद वाइल के कुर्ते पहने थे, ठहरे हुये थे। उनके गले मे चमकती-दमकती-स्वर्ण-शृंखलाएँ-महेश के कंठ-काल की भांति शोभा दे रही थीं। उनका अस्तित्व रक्षा की गारंटी था। फिर मै आशा-वादी था और मानव-जाति की श्रेष्ठता मे विश्वास करता था। मेरे मन मे कोई शंका क्यो स्थान पाती?

हम लोग सैर को चले। 'क्या देखे और क्या न देखे' के संबंध मे भी तागे वालो की बात को आप्त वाक्य मानकर, उनकी माया-रुपिणी इच्छा के वशवर्ती होकर यंत्रारूढ़ की भाँति घूमने लगे। जिसे उन्होने कह दिया—"अवसि देखिए, देखन जोगू", वही हमारे लिये परम दर्शनीय बन गया। उनकी रुचि लोक-रुचि की प्रतीक थीं।

जब कभी मै ताँगा घटो के हिसाब से किराये पर करता हूँ, तभी मुझे Time is money (समय ही धन है) की सत्यता मे विश्वास होता है, किंतु उस समय, जब रुपये की परवा न थी, तो उसके पर्याप्त समय की कब चिता होती? मै तो अनंत काल तक घूमता ही रहता (ताँगे वाले का तो एक-एक क्षण दुधार गाय बन रहा था) किंतु मेरी छोटी बालिका ने रुदन की ठानी। वह समय का मूल्य जानती थी। उससे सोने का समय हो गया था। हम लोग धर्मशाला लौटे॥ असबाब पर एक उड़ती हुई निगाह डाल कर थके-माँदे कमरो के आगे सो रहे। बड़ी स्वस्थ निद्रा आई। सुबह उठे, और गंगा-स्नान के लिये प्रस्थान करने वाले ही थे कि कुछ रुपया और ले ले, लौटते समय बाजार से कुछ सौदा पत्ता भी कर लेंगे। देवीजी एक साड़ी खरीदना चाहती थीं। बक्स का ताला खुला था। सोचा, गलती से खुला रह गया होगा।

रुपयों की थैली की तरफ हाथ डाला गया, वह गायब ! सुनहली जेवर के डब्बे की तरफ हाथ बढ़ाया, तो वह भी नदारद ! सोने के ढेले की गंध भी न मिली। यदि कपूर का ढेला होता, तो कुछ दिनों कपड़ों में तो उसकी गंध रहती। देवीजी का चेहरा फ़क़ पड़ गया। अब क्या करोगे, चोरी हो गई ! आश्चर्यमुद्रा धारण कर मैंने भी चोरी शब्द की प्रतिध्वनि कर दी। प्रकृतिस्थ होने पर देवी जी को धीरज बँधाते हुए कहा—"अभी पुलिस को लाता हूँ। ऐसी बात नही कि पता न लगे।"

मैं उन्हे वहीं छोड़कर पूछता-पाछता थाने की ओर लपका। वहाँ जिधर देखूँ, वही सन्नाटा। दारोगाजी कहाँ है ? एक बम केस की तफ्तीश में गए हैं। छोटे दारोगाजी कहाँ है ? कोर्ट साहब के यहाँ गए हैं। कोई मुहर्रिर, मुंशी, ख्वांदा कांस्टिबिल रिपोर्ट लिखने वाला न मिला। मैं झुंझलाकर कोतवाली की ओर जाने वाला ही था कि छोटे दारोगाजी लौट आए। उनसे मैंने अपना दुखड़ा रोया। उन्होंने सहृदयता-पूर्वक सुनने के बजाय मुझ पर अविश्वास प्रकट किया। इतना सोना कहाँ से आया ? रियासत की नौकरी का नाम लिया, तो भेद-भरी दृष्टि से कहने लगे—"तभी ! आपको क्या परवा है ! छोड़कर चल दिये सैर करने !" मुझ-सा निरभिमान पुरुष भी ऐसी अपमान-जनक बात-चीत न सुन सका। मैंने जरा कड़े स्वर से कहा—"यदि आपको रिपोर्ट लिखना हो, तो लिखिए, नहीं मैं जाता हूँ। मेरे पास फ़िज़ूल वक्त नहीं।" वह मेरे साथ धर्मशाला गए। दो-एक आद-मियों के बयान लिए, एक-आध जगह समान इधर से उधर कराया, गालियों का कोष खाली किया; बस, तफतीश की खाना-पूरी हो गई। मैं डी० एस० पी० के यहाँ गया। छतरपुर की प्राइवेट सेक्रेटरीशिप के कार्ड की चोरी नहीं हुई थी। उसके बल पर डी० एस० पी० के बंगले में तुरंत प्रवेश मिल गया। उसने

बात तो सहृदयता से सुनी, लेकिन किसी विशेष अफसर को तैनात करने से इनकार कर दिया। राजनीतिक जुर्मों (Political Crimes) की छान-बीन मे अधिकांश अफसर व्यस्त थे। बॅगले से निकलते ही चपरासी ने इनाम के लिये सलाम किया। बड़ा गुस्सा आया। लेकिन करता भी क्या। हारे ज्वारी की भाँति ताँगे पर आ बैठा।

दूसरे दिन नौ बजे से तीन बजे तक इंजतार करने के बाद कोतवाल साहब के दर्शन हुये। बड़ी दीनता धारण करने पर उन्होने एक नवयुवक इंस्पेक्टर को भेजा। उनकी सलाह से मेरे पड़ोस के सफेद-पोश लोगो की कलकत्ते के पते पर तलाशी के लिये वहाॅ के सुपरिंटेंडेंट महोदय को तार दिया गया। वहाँ से जवाब आया कि कलकत्ते में वह गली ही नहीं। मै अपना-सा मुॅह लेकर रह गया।

छतरपुर से माल खरीदने आए हुए पुरोहितजी ने परिस्थिति का अध्ययन कर मुझे बतलाया कि चोरी किस तरह हुई होगी। सीक की ओट पहाड़ की बात निकली। मेरे कमरे से मिले हुये कमरे के बीच मे जो किवाड़ थे उनमे देशी तरह की साॅकल थी। उसके कुंडे के छोर पीछे की ओर मुड़े थे। वे नरम लबिया के थे; सहज ही मे पीछे से सीधे किये जा सकते थे। कुंडी को पीछे ठोककर किवाड़ खोलने मे विशेष बुद्धिमानी की जरूरत न थी, उस काम को मैं भी कर सकता था। मेरा अज्ञान-तिमिराँध दूर हो गया। बेचरा ताला क्या करता? चोरी भी एक कला है।

दो दिन की छान-बीन मे यह पता चला कि उस रोज एक ठगों का दल कानपुर आया था। उसने जुग्गीलाल कमलापति के यहाँ कलकत्ते की दूकान से, यह तार दिलवाया था कि उस गोल के

किसी व्यक्ति-विशेष को ५,०००) दे दिये जायँ। उनका मुनीम उस झाँसे में नही आया। वार खाली गया। वह तो बच गये, मैं गरीब मारा गया। ५,०००) नही, तो २,५००) से कुछ ज्यादा हाथ लग गये। मृच्छकटिक के नायक चारुदत्त की भाँति मैंने भी संतोष कर लिया कि चोर हमारे घर से निराश नहीं गया। उसकी विद्या सफल हुई। वह जरूर सायत देखकर चला होगा।

तीन रोज की इक्का-ताँगा की दौड़-धूप और तारबर्की में मेरी जेब का भार आधा रह गया, और जब जलेसर जाने-मात्र का किराया मेरे पास रह गया, तो दो दिन का स्थगित गंगा-स्नान का कार्य पूरा कर मैंने जलेसर का टिकट कटाया। जलेसर से मेरठ आया। वहाँ मेरी देवीजी के भाई साहब ने हम लोगों को एक कमरा दिया। उसके लिये एक छ लिवर का मजबूत ताला भी दिया। ताला देकर मुझे भाग्य की विडंबना पर हँसी आई। जब कुछ माल ही न रहा, तब ताले की क्या जरूरत ?

मालूम नहीं, मेरी चोरी क्यों हुई ? पूर्वजन्म के पापों के उदय होने से या इस जन्म की गफलत के कारण ! जो कुछ भी हो, कनक से सौगुनी कनक की मादकता का नशा हिरन हो गया। छुट्टी लेने और चोरी होने का यही फल हुआ कि मैं अपना काम-काज रुचि और तन्मयता के साथ करने लगा।

## अभ्यास के लिए

१—इस कथात्मक निबन्ध को अपने शब्दों में लिखो।

२—इस निबन्ध में लेखक ने पुलिस की उदासीनता पर जो प्रकाश

डाला है, उस पर अपनी सम्मति लिखो।

३—भावार्थ स्पष्ट करोः—

"परमेश्वर के घर तक पहुँचने को अनेको रास्ते हैं, वाराणसी की भाँति शरण देने वाली धर्मशाला का आश्रय लिखा गया"।

४—समास विग्रह करोः—

पापप्रक्षालिनी, पुण्यतोया' नयनाभिराम।

---

# १२—आत्मसंस्कार और संगति

[ लेखक—आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ]

आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के उद्भट विद्वान्, उत्कृष्ट समालोचक, मौलिक निबन्धकार, गम्भीर लेखक एव सुकवि थे। इनका जन्म बस्ती जिला के अगोना ग्राम में सवत् १६४१ मे हुआ था। इन्होंने कालेज मे रह कर एफ० ए० तक शिक्षा प्राप्त की थी, किन्तु स्वाध्याय से आपने हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था। मिशन स्कूल मिर्जापुर में अध्यापन कार्य करने के बाद सवत् १६६५ में आप काशी आये और शब्दसागर के सहकारी संपादक नियुक्त हुए। काशी-नागरी-प्रचारिणी पत्रिका का कई वर्ष तक आपने सपादन भी किया और फिर हिन्दू विश्वविद्यालय मे मृत्यु पर्यन्त हिन्दी अध्यापक का कार्य करते रहे।

शुक्ल जी हिन्दी के आलोचक-सम्राट् थे। हिंदी मे वैज्ञानिक ढग की समीक्षा का प्रारम्भ इन्हीं के लेखों से हुआ। जायसी, तुलसी और सूर पर लिखे हुये आलोचनात्मक निबन्ध सर्वमान्य हैं। इनका हिन्दी-साहित्य का इतिहास अत्यन्त सुन्दर मौलिक ग्रन्थ है जिसके अनुकरण पर हिन्दी में अनेक पुस्तके लिखी गईं और लिखी जा रही हैं। हिन्दुस्तानी एकेडमी द्वारा शुक्ल जी को इस पुस्तक पर ५,००) का पुरस्कार भी मिला था। उनके मनोवैज्ञानिक लेखों का सग्रह 'चिन्तामणि' नाम से छपा है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने आप की इस पुस्तक पर 'मङ्गला-प्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया है। 'काव्य मे रहस्यवाद' आपकी गद्य और आलोचना की पुस्तक है। बुद्धचरित, शशांक आपके सुन्दर

अनुवाद-ग्रन्थ हैं। हृदय का मधुर भार, वसन्त, पथिक इत्यादि आपकी प्रसिद्ध कविताएँ हैं जिनमे प्रकृति का वर्णन बहुत ही सुन्दर है।

शुक्ल जी गंभीर प्रकृति के लेखक थे। आपकी गद्य-शैली पर आपके व्यक्तित्व की अनोखी छाप है। आपकी लेखन-शैली ठोस और सक्षिप्त है। मननशीलता एवं उद्भावना इसकी प्रधान विशेषताएँ हैं। आपकी भाषा संस्कृत-निष्ठ है। मुहावरो और कहावतो का आपने बहुत ही कम प्रयोग किया है। आपने उर्दू शब्दो का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है जिससे आपके काव्य मे अपूर्वता आ गई है। आपका वाक्य सगठन बडा ही सुंदर है। विराम-चिन्हो का प्रयोग आपने बडी ही सतर्कता से किया है।

यह लेख 'आत्मसस्कार और सङ्गति', 'आदर्श जीवन' नामक पुस्तक से उद्धृत किया गया है।

संगति का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है। जो मनुष्य आत्मसंस्कार मे लगा हो उसे अपने मिलने वालों के आचरण पर भी दृष्टि रखनी चाहिए, उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि उनकी बुद्धि और उनका आचरण ठिकाने का है। साधारणतः हमें अपने ऊपर ऐसे प्रभावो को न पड़ने देना चाहिए जिनसे हमारी विवेचना की गति मन्द हो वा भले-बुरे का विवेक क्षीण हो। [जीवन का उद्देश्य क्या है? क्या वह भविष्य के लिये आयोजन का स्थान नही है? क्या वह तुम्हारे हाथ मे सौपा हुआ ऐसा पदार्थ नही है जिसका लेखा तुम्हे परमात्मा को और अपनी आत्मा को देना होगा? सोचो तो कि दो, चार, दस जितने गुण तुम्हे दिए गए है, उन्हे तुम्हे देनेवाले को पचास गुने सौगुने करके लौटाना चाहिए, अथवा ज्यो के त्यो बिना ब्याज वा वृद्धि के] यदि जीवन एक प्रहसन ही है जिसमे तुम गा-बजाकर और हँसी-ठट्ठा करके समय काटो, तब

जो कुछ उसके महत्त्व के विषय में मैंने कहा है, सब व्यर्थ ही है। पर जीवन मे गंभीर बातें और विपत्ति के दृश्य भी हैं। मेरी समझ में तो महाराणा प्रताप की भांति संकट में दिन काटना वाजिदअली शाह की भाँति भोग-विलास करने से अच्छा है। मेरी समझ मे शिवाजी के सवारों की तरह चने बांधकर चलना औरंगजेब के सवारो की तरह हुक्के और पान-दान के साथ चलने से अच्छा है। मै जीवन को न तो दुःख-मय और न सुखमय बतलाना चाहता हूँ, बल्कि उसे एक ऐसा अवसर समझता हूँ जो हमे कुछ कर्त्तव्यों के पालन के लिए दिया गया है, जो हमे परलोक के लिये कुछ कमाई करने के लिये दिया गया है। हमारे सामने ऐसे बहुत से लोगों के दृष्टांत हैं जिनके विचार भी महान् थे, कर्म भी महान् थे।

हमें सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हम कैसा साथ करते हैं। दुनिया तो जैसी हमारी संगत होगी, वैसा ही समझेगी ही; पर हमें अपने कामो मे भी संगत ही के अनुसार सहायता या बाधा पहुँचेगी। उसका चित्त अत्यंत दृढ़ समझना चाहिए जिसकी चित्तवृत्ति पर उन लोगो का कुछ भी प्रभाव न पड़े जिनका बराबर साथ रहता है। पर अच्छी तरह समझ रखो कि यह कभी हो नहीं सकता। चाहे तुम्हें जान न पड़े, पर उनका प्रभाव तुम पर बराबर हर घड़ी पड़ता रहेगा और उसी के अनुसार तुम उन्नत या अवनत होगे, उत्साहित या हतोत्साह होगे। एक विद्वान् से पूछा गया—"जीवन में किस शिक्षा की सब से अधिक आवश्यकता है ?" उसने उत्तर दिया—"व्यर्थ की बातों को जानकर भी अनजान होना।" यदि हम जान-पहचान करने में बुद्धिमानी से काम न लेंगे तो हमे बराबर अनजान बनना पड़ेगा।

[महामति बेकन कहता है—"समूह का नाम संगत नहीं है।

जहाँ प्रेम नही है, वहाँ लोगो की आकृतियाँ चित्रवत् हैं और उनकी बातचीत झाँझ की झनकार है।" पहचान करने में हमें कुछ स्वार्थ से काम लेना चाहिये। जान-पहचान के लोग ऐसे हो जिनसे हम कुछ लाभ उठा सकते हो, जो हमारे जीवन को उत्तम और आनदमय करने मे कुछ सहायता दे सकते हो, यद्यपि उतनी नही जितनी गहरे मित्र दे सकते हैं। मनुष्य का जीवन थोड़ा है, उसमे खोने के लिये समय नहीं। यदि क, ख और ग हमारे लिये कुछ नहीं कर सकते, न कोई बुद्धिमानी वा विनोद की बातचीत कर सकते है, न कोई अच्छी बात बतला सकते हैं, न अपनी सहानुभूति द्वारा हमे ढाढ़स बँधा सकते है, न हमारे आनंद मे सम्मिलित हो सकते है, न हमे कर्त्तव्य का ध्यान दिला सकते है, तो ईश्वर हमे उनसे दूर ही रखे। हमे अपने चारो ओर जड़ मूर्तियाँ सजाना नही है। आजकल जान-पहचान बढ़ाना कोई बड़ी बात नहीं है। कोई भी युवा पुरुष ऐसे अनेक युवा पुरुषो को पा सकता है जो उसके साथ थिएटर देखने जायँगे, नाच-रंग मे जायंगे, सैर-सपाटे मे जायँगे, भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करेगे। यदि ऐसे जान-पहचान के लोगो से कुछ हानि न होगी तो लाभ भी न होगा। पर यदि हानि होगी तो बड़ी भारी होगी। सोचो तो, तुम्हारा जीवन कितना नष्ट होगा, यदि ये जान-पहचान के लोग उन मनचले युवको मे से निकले जिनकी संख्या दुर्भाग्यवश आजकल बहुत बढ़ रही है, यदि उन शोहदो मे से निकले जो अमीरो की बुराइयो और मूर्खताओ की नकल करते है, दिन-रात बनाव-सिगार मे रहा करते है, कुलटा स्त्रियो के फोटो मोल लिया करते हैं, महफिलों मे 'ओः हो हो' 'वाह' वाह' किया करते है, गलियों मे ठट्ठा मारते हैं और सिगरेट का धुआँ उड़ाते चलते हैं। ऐसे नवयुवको से बढ़कर शून्य, निःसार और शोचनीय जीवन

और किसका है ? वे अच्छी बातों के सच्चे आनन्द से कोसों दूर हैं। उनके लिए न तो संसार में सुन्दर और मनोहर उक्ति वाले कवि हुए हैं और न सुन्दर आचरण वाले महात्मा हुए हैं। उनके लिये न तो बड़े-बड़े वीर अद्भुत कर्म्म कर गए हैं और न बड़े-बड़े ग्रन्थकार ऐसे विचार छोड़ गये हैं जिनसे मनुष्य जाति के हृदय में सात्विकता की उमंगें उठती हैं। उनके लिये फूल-पत्तियों में कोई सौंदर्य्य नहीं, झरनों के कलकल में मधुर संगीत नहीं, अनन्त सागर-तरंगों में गंभीर रहस्यों का आभास नहीं, उनके भाग्य में सच्चे प्रयत्न और पुरुषार्थ का आनन्द नहीं, उनके भाग्य में सच्ची प्रीति का सुख और कोमल हृदय की शांति नहीं। जिनकी आत्मा अपने इन्द्रिय-विषयों में लिप्त है, जिनका हृदय नीच आशयो और कुत्सित विचारों से कलुषित है, ऐसे नाशोन्मुख प्राणियों को दिन-दिन अंधकार में पतित होते देख कौन ऐसा होगा जो तरस न खायगा ? जिसने स्वसंस्कार का विचार अपने मन में ठान लिया हो, उसे ऐसे प्राणियों का साथ न करना चाहिये। मकदूनियाँ का बादशाह डेमेट्रियस कभी-कभी राज्य का सब काम छोड़ अपने ही मेल के दस-पाँच साथियों को लेकर विषय-वासना में लिप्त रहा करता था। एक बार बीमारी का बहाना करके इसी प्रकार वह अपने दिन काट रहा था। इसी बीच उसका पिता उससे मिलने के लिये गया और उसने एक हँसमुख जवान को कोठरी से बाहर निकलते देखा। जब पिता कोठरी के भीतर पहुँचा, तब डेमेट्रियस ने कहा—"ज्वर ने मुझे अभी छोड़ा है।" पिता ने कहा—"हाँ! ठीक है, वह दरवाजे पर मुझे मिला था।"

(कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है।) यह केवल नीति और सद्वृत्ति का नाश नहीं करता, बल्कि बुद्धि का भी क्षय करता है। किसी युवा पुरुष की सङ्गत यदि बुरी होगी, तो वह

उसके पैर मे बंधी चक्की के समान होगी जो उसे दिन-दिन अवनति के गढ़े मे गिराती जायगी; और यदि अच्छी होगी तो सहारा देनेवाली बाहु के समान होगी जो उसे निरंतर उन्नति की ओर उठाती जायगी।

बहुत से लोग ऐसे होते है जिनके घड़ी भर के साथ से भी बुद्धि भ्रष्ट होती है; क्योकि उतने ही बीच मे ऐसी-ऐसी बाते कही जाती हैं जो कानो मे न पड़नी चाहिए, चित्त पर ऐसे-ऐसे प्रभाव पड़ते हैं जिनसे उसकी पवित्रता का नाश होता है, बुराई अटल भाव धारण करके बैठती है। बुरी बाते हमारी धारणा मे बहुत दिनो तक टिकती हैं। इस बात को प्रायः सब लोग जानते है कि भद्दी दिल्लगी वा फूहड़ गीत जितनी जल्दी ध्यान पर चढ़ते है, उतनी जल्दी कोई गंभीर वा अच्छी बात नहीं। एक बार एक मित्र ने मुझसे कहा कि उसने लड़कपन मे कहीं से एक बुरी कहावत सुन पाई थी जिसका ध्यान वह लाख चेष्टा करता है कि न आवे, पर बार-बार आता है। जिन भावनाओं को हम दूर रखना चाहते हैं, जिन बातों को हम याद नही करना चाहते, वे बार-बार हृदय मे उठती है और बेधती हैं। अतः तुम पूरी चौकसी रखो, ऐसे लोगों को कभी साथी न बनाओ जो अश्लील, अपवित्र और फूहड़ बातो से तुम्हे हँसाना चाहे। सावधान रहो। ऐसा न हो कि पहले-पहल तुम इसे एक बहुत सामान्य बात समझो और सोचो कि एक बार ऐसा हुआ, फिर ऐसा न होगा; अथवा तुम्हारे चरित्र-बल का ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि ऐसी बातें बकनेवाले आगे चल कर आप सुधर जायँगे। नही, ऐसा नहीं होगा। जब एक बार मनुष्य अपना पैर कीचड़ मे डाल देता है, तब फिर यह नहीं देखता कि वह कहाँ और कैसी जगह पैर रखता है। धीरे-धीरे उन बुरी बातों से अभ्यस्त होते-होते तुम्हारी घृणा कम हो जायगी। पीछे तुम्हें उनसे चिढ़ न मालूम होगी,

क्योंकि तुम वह सोचने लगोगे कि चिढ़ने की वात ही क्या है। तुम्हारा विवेक कुंठित हो जायगा और तुम्हे भले-बुरे की पहचान न रह जायगी। अंत मे होते-होते तुम भी बुराई के भक्त बन जाओगे। अतः हृदय को उज्ज्वल और निष्कलंक रखने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि बुरी संगत की छूत से बचो। यह पुरानी कहावत है कि—

काजल की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय,
एक लीक काजर की लागिहै पै लागिहै।

जो कुछ ऊपर कहा गया है, उससे यह न समझना चाहिए कि मै युवा पुरुषों को समाज में प्रवेश करने से रोकता हूँ। नही, कदापि नहीं। अच्छा समाज यदि मिले तो उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है और उससे आत्मसंस्कार के कार्य में बड़ी सहायता मिलती है। प्रायः देखने मे आता है कि गाँवों से जो लोग नगरों में जीविका आदि के लिए आते हैं, उनका जी बहुत दिनो तक, संगी साथी न रहने से, बहुत घबराता है और कभी-कभी उन्हे ऐसे लोगों का साथ कर लेना पड़ता है जो उनकी रुचि के अनुकूल नहीं होते। ऐसे लोगों के लिए अच्छा तो यह होता है कि वे किसी साहित्य-समाज में प्रवेश करें। पर वहाँ भी उन्हें उन सब बातों की जानकारी नहीं प्राप्त हो सकती जो स्वशिक्षा के लिए आवश्यक हैं। समाज में प्रवेश करने से हमें अपना यथार्थ मूल्य विदित होता है। हम देखते हैं कि हम उतने चतुर नहीं हैं जितने एक कोने में बैठकर कोई पुस्तक आदि हाथ में लेकर अपने को समझा करते थे। भिन्न-भिन्न लोगो में भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण होते हैं। यदि कोई एक बात में निपुण है तो दूसरा दूसरी में। समाज में प्रवेश करके हम देखते हैं कि इस बात की कितनी आवश्यकता है कि लोग हमारी

भूलों को क्षमा करें; अतः हम दूसरो की भूल-चूक को क्षमा करना सीखते है। हम कई ठोकरें खाकर नम्रता और अधीनता का पाठ सीखते है। इनके अतिरिक्त और भी बड़े-बड़े लाभ होते है। समाज में सम्मिलित होने से हमारी समझ बढ़ती है, हमारी विवेक बुद्धि तीव्र होती है, वस्तुओ और व्यक्तियों के संबंध मे हमारी धारणा विस्तृत होती है, हमारी सहानुभूति गहरी होती है, हमे अपनी शक्तियो के उपयोग का अभ्यास होता है। समाज एक परेड है जहाँ हम चढ़ाई करना सीखते हैं। अपने साथियों के साथ-साथ मिलकर बढ़ना और आज्ञा पालन करना सीखते हैं। इनसे भी बढ़कर और बातें हम सीखते हैं। हम दूसरो का ध्यान रखना, उनके लिये कुछ स्वार्थ-त्याग करना सीखते है, सद्गुणो का आदर करना और सुन्दर चालढाल की प्रशंसा करना सीखते हैं। स्वसंस्काराभिलाषी युवक को उस चाल व्यवहार की अवहेलना न करनी चाहिए जो भले आदमियो के समाज मे आवश्यक समझी जाती है। बड़ों के प्रति सम्मान और सरलता का व्यवहार, बराबर वालों से प्रसन्नता का व्यवहार, और छोटो के प्रति कोमलता का व्यवहार भलेमानुसो के लक्षण हैं। सुडौल और सुन्दर वस्तु को देखकर हम लोग प्रसन्न होते हैं। सुन्दर चालढाल को देखकर हम सब लोग आनंदित होते हैं। मीठे वचनो को सुनकर हम सब लोग सतुप्ट होते हैं। ये सब बाते हमे मनोनीत होती हैं। किसी भले आदमी को यह कहते सुनकर कि फटी, पुरानी और मैली पुस्तक हाथ मे लेकर पढ़ते नहीं बनता हमे हँसना नही चाहिए। सोचो तो कि तुम्हारी मंडली मे कोई उजड्ड गँवार आकर फूहर बातें बकने लगे तो तुम्हे कितना बुरा लगेगा।

युवा पुरुषों को बुरे अनुभवों से बचने के लिये सब से सीधा और सुगम उपाय सत्संग है। अच्छे आदमियों के समाज मे बैठने

से, जहाँ परस्पर प्रेम और शांति का आनन्द रहता है, बड़ी भारी रक्षा रहती है। यह निश्चय समझना चाहिये कि ऐसे बहुत कम मनुष्य मिलेंगे जो पहले पहल प्रसन्नता के साथ बुराइयों में फँसते हों, तथा संसार की बुराइयों का अनुभव प्राप्त करते हुए जो कुछ हिचकते न हों और जिनके जी मे कुछ खटका न होता हो। मुझे पूरा विश्वास है कि अधिकांश युवा पुरुष जब पहले पहल कुमार्ग पर पैर रखते हैं, तब यदि संसार मे कोई उनका हाथ पकड़ने वाला हो तो वे उससे हट सकते हैं। संसार मे सब प्रकार के रंग मे रहने का उपदेश तो बहुत लोग किया करते हैं और बहुत से लोग विषयमद मे मत्त भी होते हैं, पर अपनी इस मौज से आगे चलकर वे ऊब जाते हैं और सौ में निन्नानवे मनुष्य इस मौज की लीक ग्लानि और घृणा के साथ पीटते चले जाते है, उन्हे उसमे कोई आनन्द नहीं रह जाता और अंत मे उनकी आत्मा इतनी जड़ हो जाती है कि उसमे सत्य और सौंदर्य्य का कुछ भी अनुभव नहीं रह जाता। पर इस पतित दशा में पड़ने के पहले मनुष्य अच्छी बातो के लिए छटपटाता अवश्य है, और उसका यह छटपटाना सफल हो सकता है, यदि वह इस संसार के कलुषित अंधेरे मार्गों से निकलकर किसी अच्छे परिवार वा अच्छे समाज में पड़ जाय।

हमारे बड़े नगरो के युवक साधारणतः दो भागों मे बाँटे जा सकते हैं—एक वे जिन्होंने लड़कपन मे कुछ धर्म संबंधी शिक्षा पाई, दूसरे वे जिन्होंने संसार के व्यवहारों में प्रवेश करने के पहले इस प्रकार की तैयारी नही की। पहले प्रकार के लोगों के लिए तो कथा-वार्त्ता, धर्मोपदेश आदि बहुत से साधन मिल जाते हैं जिनसे चित्त पर घर ही का सा संस्कार बना रहता है। उनके लिये किसी नए यंत्र की आवश्यकता नहीं होती। जो यंत्र उनके पास रहता है, उसी के स्वच्छंद उपयोग की आवश्यकता

होती है। धर्मोपदेशकों को युवा पुरुषों की बहुत खोज-खबर रखनी चाहिए; उन्हे कुमार्ग से बचाने का उद्योग करना चाहिए। उनकी सहायता के लिए प्रत्येक समय उद्यत रहना चाहिए। माता-पिता को भी चाहिए कि युवकों को घर से बाहर किसी अन्य स्थान पर भेजते समय ऐसा प्रबंध करें कि उनके चित्त का संस्कार शुद्ध रहे। हमारे युवा पुरुष चाहे जिस नगर मे जायँ, उन्हें धर्मचर्चा सुनने का अवसर मिल सकता है, धार्मिक सज्जनों की मंडली मिल सकती है; क्योंकि भारत के ऐसा धार्मिक देश दूसरा नहीं।

अब रह गए दूसरे वर्ग के लोग जिन्होंने परिवार में सच्चा सुख नहीं प्राप्त किया है, जो किसी कारणवश धार्मिक संस्कार से वंचित रहे हैं। ऐसो के लिए तो कोई उपाय बताना कठिन है। आत्मसंस्कार का प्रयत्न यदि हृदय से करें तो ऐसे युवा पुरुष भी दुष्ट प्रलोभनों से बच सकते हैं; पर उनके लिए सबसे अच्छा उपाय यही है कि वे सत्संग करें। सत्संग का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। इसमे से बहुत से लोग तो समाजों और साहित्य-संस्थाओ मे सम्मिलित होकर अपने समय का सदुपयोग कर सकते हैं और बुराइयो में पड़ने से बचे रह सकते हैं। पर बहुत से ऐसे निकलेंगे जिनकी सभा-समाजो की ओर प्रवृत्ति नहीं होगी, जिन्हे धर्मोपदेश अच्छे नहीं लगते, जो अधिक चहल-पहल और मजेदारी की बाते चाहते हैं। बहुत से युवा पुरुष जो गलियो मे टेढ़ी टोपी देकर निकलते है, जो अश्लील ठुमरी-टप्पा गाते चलते है, जो दिन-रात शतरंज गंजीफा खेलते रहते हैं, जो दुनियाँ मे सब तरह के मजे उड़ाने का दम भरते है, जो मेलों-तमाशों में खूब बन-ठनकर निकलते है, जो महफिलों मे बिना बुलाए पहुँचते है, उनके लिए क्या किया जा सकता है? वे समाज के कोढ़ हैं, वे उसी प्रकार भयंकर है जिस प्रकार चोर और डाकू,

जिनके पीछे पुलिस तैनात रहती है। वे समाज में बड़े-बड़े अनर्थों का सूत्रपात करते हैं।

## अभ्यास के लिए

१—आत्मसस्कार के अभिलाषी युवकों को कैसे लोगों की सगति रखनी चाहिये ?

२—नाना प्रकार के लोगों से मिलने से युवा पुरुष को क्या लाभ होता है ? विस्तार-सहित समझाइये।

३—निम्नांकित वाक्यों के भाव को भली भाँति समझाइए :—

(क) कुसंग का ज्वर भयानक होता है।

(ख) बुराई हमारी धारणा में बहुत दिनों तक टिकती है।

४—बुरे प्रभावों से बचने का सरल उपाय क्या है ?

५—सत्संग के प्रभाव और महत्त्व पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

६—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल की गद्य-शैली एवं रचनाओं पर एक निबन्ध लिखिये।

---

# १३—लोकमान्य के चरणों में

[ लेखक—श्री वियोगी हरि ]

श्री वियोगी का जन्म स० १६५३ वि० मे छतरपुर रियासत मे हुआ था। आपका वास्तविक नाम हरि प्रसाद द्विवेदी है। किंतु आप अपने उपनाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं। आपके जीवन का अधिकाश भाग लोक-सेवा मे ही बीता है। अछूतों के आदोलनो मे आपने बडी दिलचस्पी से भाग लिया है, और हरिजन आश्रम दिल्ली मे रह कर इस सबध मे ठोस कार्य किया है। हिंदी-प्रचार के लिए भी आपने अधिक परिश्रम किया है। हिदी साहित्य सम्मेलन के करॉची अधिवेशन में आपको सभापति चुन कर हिंदी जगत ने आपको सम्मानित किया है।

वियोगी हरि जी बडे ही सरस, भावुक-भक्त, एवं श्रेष्ठ गद्य-गीतकार हैं। ब्रजभाषा और ब्रज-साहित्य पर आपकी विशेष ममता है। 'भक्तों की भजनावली', 'ब्रज माधुरी सार' आपके संकलन हैं तथा 'अंतर्नाद', 'प्रेम योग', 'साहित्य विहार', 'वीर सतसई' मौलिक रचनाएँ हैं। 'वीर सतसई' पर आपको हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से 'मगला प्रसाद पारितोषिक' भी प्राप्त हो चुका है

हिंदी गद्य-गीतकारों में हरि जी का स्थान बहुत ऊँचा है। आपके गद्य-गीत भक्ति के उद्गार से ओतप्रोत हैं। आपकी भाषा विषयों के अनुसार परिवर्तित होती है, किंतु आपका व्यक्तित्व सर्वत्र प्रतिबिंबित होता रहता है। आपकी शैली मे जहॉ एक ओर पाडित्य-प्रदर्शन, अलंकार योजना, एव दीर्घ समासों की छटा है, वहॉ दूसरी ओर हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिये घरेलू भाषा की मिठास भी है। भावावेश की अवस्था में आपकी भाषा सरल एवं भावपूर्ण होती है। वाक्य जरा

छोटे और शब्द बोलचाल के होते हैं। आपने भाषा को सरस और चपल बनाने के लिये यत्र-तत्र उर्दू शब्दों और मुहाविरों का भी प्रयोग किया है। भावानुभूति मे सच्चाई होने के कारण आपकी शैली में ओज, प्रभाव और बल विद्यमान रहता है। आपके भावमय गीत, व्यंगपूर्ण और अन्योक्तिमय होते हैं।

आज का नैमित्तिक धर्म लोकमान्य का पुण्य-स्मरण है। आज तिलक की पुण्य तिथि है।

१६२० मे तिलक शरीर रूप से हमारे अंदर नहीं रहे। उस समय मैं बम्बई गया था। चार-पांच दिन पहले ही पहुँचा था। परंतु डाक्टर ने कहा 'अभी कोई डर नही है।' इसलिए मैं एक काम से साबरमती जाने को रवाना हुआ। मै आधा रास्ता भी पार न कर पाया होऊँगा कि मुझे लोकमान्य की मृत्यु का समाचार मिला। मेरे अत्यंत निकट के आत्मीय सहयोगी और मित्र की मृत्यु का जो प्रभाव हो सकता हैं वही लोकमान्य के निधन का हुआ। मुझ पर बहुत गहरा असर हुआ। उस दिन से जीवन मे कुछ नयापन-सा आ गया। मुझे ऐसा लगा मानो कोई बहुत ही प्रेम करने वाला कुटुम्बी चल बसा हो। इसमे जरा भी अत्युक्ति नही है। आज इतने बरस हो गये। आज फिर उनका स्मरण करना है। लोकमान्य के चरणो मे अपनी यह तुच्छ श्रद्धांजलि अपनी गहरी श्रद्धा के कारण मैं चढ़ा रहा हूँ।

तिलक के विषय मे जब मै कुछ कहने लगता हूं तो मुँह से शब्द निकलना कठिन हो जाता है, गद्‌गद हो उठता हूँ। साधु-संतों का नाम लेते ही मेरी जो स्थिति होती है वही इस नाम से भी होती है। मैं अपने चित्त का भाव प्रकट ही नहीं कर सकता। उत्कट भावना को शब्दों में व्यक्त करना कठिन होता है। गीता का भी नाम लेते ही मेरी यही स्थिति हो जाती है। मानो स्फूर्ति

का संचार हो जाता है। भावनाओ की प्रचंड बाढ़ आ जाती है। वृत्ति उमड़ने लगती है। परन्तु यह वड़प्पन मेरा नहीं है। वड़प्पन गीता का है। यही हाल तिलक के नाम का है। मै तुलना नही करता। क्योकि तुलना मे सदा दोष आ जाते है। परन्तु जिनके नाम स्मरण मे ऐसी स्फूर्ति की शक्ति है उन्हीं मे से तिलक भी है। मानो उनके स्मरण मे ही शक्ति संचित है। रामनाम को ही देखिये। कितने जड़ जीवों का इस नाम के स्मरण से उद्धार हो गया, इसकी गिनती कौन करेगा? अनेक आंदोलन, अनेक ग्रन्थ, इतिहास, पुराण—इनमे से किसी भी चीज का उतना प्रभाव न हुआ होगा जितना कि रामनाम का हुआ है और हो रहा है। राष्ट्रो का उदय हुआ और अस्त हुआ। राज्यो का विकास हुआ और लय हुआ। किन्तु रामनाम की सत्ता अबाधित रूप से विद्यमान है। तुलसीदासजी ने कहा है "कहउं नाम वड़ राम तें।"—हे राम, मुझे तुझसे तेरा नाम ही अधिक प्रिय है। तेरा रूप तो उस समय के अयोध्यावासियों ने और उस जमाने के नर-वानरो ने देखा। हमारे सामने तेरा रूप नही, लेकिन तेरा नाम है। जो महिमा तेरे नाम मे है वह तेरे रूप में नही। हे राम, तू ने शबरी, जटायु आदि का उद्धार किया। लेकिन वे तो सुसेवक थे। इसमे तेरा वड़प्पन कुछ नहीं। परन्तु तेरे नाम ने अनेक खलजनो का उद्धार किया, यह वेद कहते है—"

"सवरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल वेद-विदित गुनगाथ॥"

तुलसीदासजी कहते हैं, राम की महिमा गाने वाले मूढ हैं। राम ने तो वड़े-वड़े सेवकों का ही उद्धार किया। परन्तु नाम ने? नाम ने असंख्य जड़-मूढ़ों का उद्धार किया। शबरी

तो असामान्य सी थी। उसका वैराग्य और उसकी भक्ति कितनी महान् थी। वैसा ही वह जटायु था। इन श्रेष्ठ जीवों का, इन भक्तजनों का राम ने उद्धार किया। कौन बड़ी बात हुई? परन्तु रामनाम तो दुर्जनों को भी उबारता है। और दरअसल मुझे इसका अनुभव हो रहा है। मुझसे बड़ा खल दूसरा कौन हो सकता है? मेरे समान दुष्ट मैं ही हूँ। मुझे इस विषय मे दूसरो का मत जानने की जरूरत नहीं। नाम से उद्धार होता है। जिन्होने पवित्र कर्म किये, अपना शरीर परमार्थ मे खपाया, उनके नाम में ऐसा सामर्थ्य आ जाता है।

इसी में मनुष्य की विशेषता है। आहार-विहारादि दूसरी बातों में मनुष्य और पशु समान ही है। परन्तु जिस प्रकार मनुष्य पशु या पशु से भी नीच बन सकता है, उसी प्रकार पराक्रम से, पौरुप से वह परमात्मा के निकट भी जा सकता है। मनुष्य में ये दोनो शक्तियाँ है। खूब मांस और अंडे वगैरह खाकर, दूसरे प्राणियों का भक्षण कर वह शेर के समान हृष्ट-पुष्ट भी बन सकता है; या दूसरों के लिये अपना शरीर भी फेंक सकता है। मनुष्य अपने लिए अनेकों का घात करके पशु बन सकता है; या अनेकों के लिए अपना बलिदान कर पवित्र-नाम भी बन सकता है; पशु की शक्ति मर्यादित है। उसकी बुराई की भी मर्यादा है। लेकिन मनुष्य के पतन की या ऊपर उठाने की कोई सीमा नहीं है। वह पशु से भी नीचे गिर सकता है। और इतना ऊपर चढ़ सकता है कि देवता ही बन जाता है। जो गिरता है वही चढ़ भी सकता है। पशु अधिक गिर भी नहीं सकता इसलिए चढ़ भी नहीं सकता। मनुष्य दोनों बातों में पराकाष्ठा कर सकता है। जिन लोगों ने अपना जीवन सारे संसार के लिये अर्पण कर दिया उनके नाम में बहुत बड़ी

पवित्रता आ जाती है। उनका नाम ही तारे के समान हमारे सम्मुख रहता है। हम नित्य तर्पण करते हुये कहते हैं, 'वसिष्ठं तर्पयामि', 'भारद्वाजं तर्पयामि', 'अत्रि तर्पयामि'। इन ऋषियो के बारे मे हम क्या जानते है? क्या सात या आठ सौ पन्नों में उनकी जीवनी लिख सकते हैं? शायद एकाध सफा भी नहीं लिख सकेंगे। लेकिन उनकी जीवनी न हो तो भी वसिष्ठ यह नाम ही काफी है। यह नाम ही तारक है। और कुछ शेष रहे या न रहे, केवल नाम ही तारे के समान मार्ग-दर्शक होगा, प्रकाश देगा। मेरा विश्वास है कि सैकड़ो वर्षों के बाद तिलक का नाम भी ऐसा ही पवित्र माना जायगा। उनका जीवन चरित्र आदि बहुत सा नही रहेगा। किंतु इतिहास के आकाश मे उनका नाम तारे के समान चमकता रहेगा।

हमे महापुरुषो के चारित्र्य का अनुसरण करना चाहिये, न कि उनके चरित्र का। दरअसल महत्त्व चारित्र्य का है। शिवाजी महाराज ने सौ दो सौ किले बनवाकर स्वराज्य प्राप्त किया। इसलिए आज यह नही समझना चाहिये कि उसी तरह किले बनवाने से स्वराज्य प्राप्त होगा। किंतु जिस वृत्ति से उन्होने अपना जीवन बिताया और लड़ाई की वह वृत्ति, वे गुण हमे चाहिए। जिस वृत्ति से शिवाजी ने काम किया उस वृत्ति से हम आज भी स्वराज्य प्राप्त कर सकते है। इसीलिए मैंने कहा है कि उस समय का रूप हमारे काम का नहीं है, उसका भीतरी रहस्य उपयोगी है। चरित्र उपयोगी नहीं, चारित्र्य उपयोगी है। कर्तव्य करते हुये उनकी जो वृत्ति थी वह हमारे लिए आवश्यक है। उनके गुणो का स्मरण आवश्यक है। इसीलिए तो हिंदुओ ने चरित्र का बोझ छोड़कर नाम-स्मरण पर जोर दिया। इतने महान् व्यक्तियो का सारा चरित्र दिमाग में रखने की कोशिश करे तो उसी के मारे दम घुटने लगे।

इसी लिये केवल गुणों का स्मरण करना है, चरित्र का अनुकरण नहीं।

एक कहानी मशहूर है। कुछ लड़कों ने 'साहसी यात्री' नाम की एक पुस्तक पढ़ी। फौरन यह तय किया गया कि जैसा उस पुस्तक मे लिखा है वैसा ही हम भी करें। उस पुस्तक में बीस-पच्चीस युवक थे। ये भी जहाँ-तहाँ से बीस-पचीस इकट्ठे हुए। पुस्तक मे लिखा था कि वे एक जंगल मे गये। फिर क्या था? ये भी एक जंगल में पहुँचे। पुस्तक में लिखा था कि उन लड़कों को जङ्गल मे एक शेर मिला। अब ये बेचारे शेर कहाँ से लाये? आखिर, उनमे जो एक बुद्धिमान् लड़का था वह कहने लगा, "अरे भाई हमने तो शुरू से आखिर तक गलती ही की। हम उन लड़कों की नकल उतारना चाहते हैं। लेकिन यहाँ तो सब-कुछ उलटा ही हो रहा है। वे लड़के कोई पुस्तक पढ़कर थोड़े ही निकले थे मुसाफिरी करने! हमसे तो शुरू में ही गलती हुई।"

तात्पर्य यह कि हम चरित्र की सारी घटनाओं का अनुकरण नहीं कर सकते। चरित्र का तो विस्मरण होना चाहिए। केवल गुणों का स्मरण पर्याप्त है। इतिहास तो भूलने के लिये ही है और लोग उसे भूल भी जाते है। लड़कों के ध्यान में वह सब का सब रहता भी नहीं है। इसके लिये उन पर फिजूल मार भी पड़ती है। इतिहास से हमें सिर्फ गुण ही लेने चाहिए। जो गुण हैं उन्हें कभी भूलना नहीं चाहिए, श्रद्धापूर्वक याद रखना चाहिये। पूर्वजों के गुणों का श्रद्धापूर्वक स्मरण ही श्राद्ध है। यह श्राद्ध पावन होता है। आज का श्राद्ध मुझे पावन प्रतीत होता है। इसी प्रकार आपको भी अवश्य होता होगा।

तिलक का पहला गुण कौन सा था? तिलक जाति:ब्राह्मण

थे। लेकिन जो ब्राह्मण नहीं हैं वे भी उनका स्मरण कर रहे हैं। तिलक महाराष्ट्र के मराठे थे। लेकिन पंजाब के पंजाबी और बङ्गाल के बङ्गाली भी उन्हे पूज्य मानते है। हिन्दुस्तान तिलक का ब्राह्मणत्व और उनका मराठापन, सब कुछ भूल गया है। यह चमत्कार है। इसमे रहस्य है—दोहरा रहस्य है। इस चमत्कार मे तिलक का गुण तो है ही, हमारे पूर्वजो की कमाई का भी गुण है। जनता का एक गुण और तिलक का एक गुण—दोनो के प्रभाव से यह चमत्कार हुआ कि ब्राह्मण और महाराष्ट्रीय तिलक सारे भारत मे सभी जातियो द्वारा पूजे जाते है। दोनो के गुण की ओर हमे ध्यान देना चाहिए।

इस अवसर पर मुझे अहल्या की कथा याद आ रही है। रामायण में मुझे अहल्या की कथा बहुत सुहाती है। राम का सारा चरित्र ही श्रेष्ठ है। और उसमें यह कथा तो बहुत ही प्यारी है। आज भी यह बात नही कि हमारे अंदर राम (सत्त्व) न रहा हो। आज भी राम है। रामजन्म हो चुका है, चाहे उसका किसी को पता हो या न हो। परन्तु आज राष्ट्र मे राम है, क्योकि अन्यथा यह जो थोड़ा-बहुत तेज का संचार देख पड़ता है वह न दिखाई देता। गहराई से देखें तो आज राम का अवतार हो चुका है। यह जो रामलीला हो रही है इसमे कौन-सा हिस्सा लूँ, किस पात्र का अभिनय करूँ, यह मैं सोचने लगता हूँ। राम की इस लीला मे मै क्या बनूँ? लक्ष्मण बनूँ? नहीं नहीं। उनकी वह जागृति वह भक्ति कहाँ से लाऊँ? तो क्या भरत बनूँ? नहीं, भरत की कर्तव्यदक्षता, उत्तरदायित्व का बोध, उनकी दयालुता और त्याग कहाँ से लाऊँ? हनुमान का तो नाम भी मानों राम का हृदय ही है। तो फिर गाँठ मे पुण्य नही है इसलिये क्या रावण बनूँ? ऊँऽऽहुँ। रावण भी नहीं बन सकता। रावण की उत्कटता महत्वाकांक्षा मेरे पास कहाँ है? फिर मैं कौन-सा स्वांग लूँ?

किस पात्र का अभिनय करूँ ? क्या ऐसा कोई पात्र नहीं है जो मैं बन सकूँ ? जटायु, शबरी ?—ये तो सुसेवक थे। अंत में मुझे अहल्या नजर आई। अहल्या तो पत्थर बनकर बैठी थी।

सोचा, मैं अहल्या का अभिनय करूँ। जड़ पत्थर बनकर बैठूँ। इतने मे वह अहल्या बोल उठी, "सारी रामायण में सबसे तुच्छ जड़-मूढ़ पात्र क्या मैं ही ठहरी ? अरे बुद्धिमान, क्या अहल्या का पात्र सबसे निकृष्ट है ? मुझमें क्या कोई योग्यता ही नहीं ? अरे राम की यात्रा मे तो अयोध्या से लेकर रामेश्वर तक हजारो पत्थर थे, उनका क्यो नहीं उद्धार हुआ ? मै कोई नालायक पत्थर नहीं हूँ। मै भी गुणी पत्थर हूँ।" अहल्या की बात मुझे जॅच गई। परन्तु अहल्या के पत्थर में गुण थे, तो भी यह सारी महिमा केवल उस पत्थर की नही। उसी प्रकार सारी महिमा राम के चरणो की भी नही। अहल्या के समान पत्थर और राम के चरणो जैसे चरण दोनों का संयोग चाहिये। न तो राम के चरणों से दूसरे पत्थरों का ही उद्धार हुआ, और न किसी दूसरे के चरणो से अहल्या का ही।

इसे मै अहल्या-राम-न्याय कहता हूँ। दोनों के मिलाप से काम होता है। यही न्याय तिलक के दृष्टांत पर घटित होता है। तिलक का ब्राह्मणत्व, महाराष्ट्रीयत्व आदि सब भूलकर सारा हिन्दुस्तान उनकी पुण्य-स्मृति मनाता है। इस चमत्कार मे तिलक के गुण और जनता के गुण, दोनों का स्थान है। इस चमत्कार के दोनों कारण हैं। कुछ गुण तिलक का है और कुछ उन्हें माननेवाली साधारण जनता का। हम इन गुणों का जरा पृथक्करण करें।

तिलक का गुण यह था कि उन्होंने जो कुछ किया उसमें सारे भारतवर्ष का विचार किया। तिलक के फूल बंबई में गिरे,

इसलिए वहाँ उनके स्मारक-मन्दिर होगे। उन्होने मराठी मे लिखा, इसलिये मराठी भाषा मे उनके स्मारक होगे। लेकिन तिलक ने जहाँ कही जो कुछ किया—चाहे जिस भाषा मे क्यो न किया हो, वह भारतवर्ष के लिये किया। उन्हे यह अभिमान नहीं था कि मै ब्राह्मण हूँ, मैं महाराष्ट्र का हूँ। उनमे पृथक्ता की भेद की भावना नहीं थी। वह महाराष्ट्रीय थे तो भी उन्होने सारे भारतवर्ष का विचार किया। जिन अर्वाचीन महाराष्ट्रीय विभूतियो ने सारे भारतवर्ष का विचार किया, तिलक उनमे से एक थे। और दूसरे जो मेरी दृष्टि के सामने आते है वह थे महर्षि न्यायमूर्ति रानडे। तिलक ने महाराष्ट्र को अपनी जेब मे रखा और सारे हिन्दुस्तान के लिये लड़ते रहे। "हिन्दुस्तान के हित मे मेरे महाराष्ट्र का भी हित है, इसलिये पूने का हित है, पूने मे रहने वाले मेरे परिवार का हित है और परिवार मे रहने वाले मेरा भी हित है। हिन्दुस्तान के हित का विचार करने से उसी मे महाराष्ट्र, पूना, मेरा परिवार और मैं, सब के हित का विचार आ जाता है।" यह तत्व उन्होने जान लिया था, और उसी के अनुसार उन्होने काम किया। ऐसी विशाल उनकी व्याख्या थी। जो सच्ची सेवा करना चाहता है उसे वह सेवा किसी मर्यादित स्थान मे करनी पड़ेगी। लेकिन उस मर्यादित स्थान मे रहकर की जाने वाली सेवा के पीछे जो वृत्ति रहेगी वह विशाल, व्यापक और अमर्यादित होनी चाहिये।

शालिग्राम मर्यादित है। लेकिन उसमे मैं जिस भगवान के दर्शन करता हूँ वह सर्वब्रह्मांडव्यापी, चर-अचर, जड़-चेतन सब मे निवास करने वाला ही है। तभी तो वह वास्तविक पूजा हो सकती है। 'जले स्थले तथा काष्ठे विष्णुः पर्वतमूर्धनि।' उस त्रिभुवन व्यापक विष्णु को यदि वह पुजारी शालिग्राम मे न देखेगा तो उसकी पूजा निरा पागलपन होगी। सेवा करने मे भी

खूबी है, रहस्य है। अपने गाँव में रह कर भी मैं विश्वेश्वर की सेवा करता हूँ। दूसरे को न लूटते हुए जो सेवा की जाती है वह अनमोल हो सकती है, होती भी है।

तुकाराम ने अपना देहू नामक गाँव नहीं छोड़ा। रामदास दस गाँवों मे विचरे और सेवा करते रहे। फिर भी दोनों की सेवा का फल एक है, अनंत है। यदि बुद्धि व्यापक हो तो अल्प कर्म से भी अपार मूल्य मिलता है। सुदामा मुट्ठी भर ही तंदुल लेकर गये थे लेकिन उन तंदुलो में प्रचंड शक्ति थी। सुदामा की बुद्धि व्यापक थी। बहुत बड़ा कर्म करने पर भी कुछ अभागों को बहुत थोड़ा फल मिलता है। लेकिन सुदामा छोटे-से कर्म से बहुत बड़ा फल प्राप्त कर सके। जिसकी बुद्धि शुद्ध, निष्पाप, पवित्र तथा समत्वयुक्त है, भक्तिमय और प्रेममय है, वह छोटी-सी भी क्रिया करे तो उसका फल महान् होता है। मूल्य बहुत बड़ा होता है। यह एक महान् आध्यात्मिक सिद्धांत है। माँ का पत्र दो ही शब्दों का क्यों न हो विलक्षण प्रभाव डालता है। वह प्रेम की स्याही से पवित्रता के स्वच्छ कागज पर लिखा होता है। दूसरा कोई पोथा कितने ही सफेद कागज पर क्यों न लिखा हुआ हो, यदि उसके मूल्य में शुद्ध बुद्धि न हो, निर्मल बुद्धि न हो, जो कुछ लिखा गया है वह प्रेम में ढला हुआ न हो, तो सारा पोथा बेकार है।

परमात्मा के यहाँ 'कितनी सेवा', यह पूछ नहीं है। 'कैसी सेवा' यह पूछ है। तिलक अत्यन्त बुद्धिमान, विद्वान्, नाना शास्त्रों के पंडित थे, इसलिए उनकी सेवा अनेकांगी और बहुत बड़ी है। परन्तु तिलक ने जितनी कीमती सेवा की उतनी ही कीमती सेवा एक देहाती सेवक भी कर सकता है। तिलक की सेवा विपुल और बहुअंगी थी तो भी उसका मूल्य और एक तुच्छ

सेवक की सेवा का मूल्य बराबर हो सकता है। एक गाड़ी भर ज्वार रास्ते से जा रही हो लेकिन उसकी कीमत मैं अपनी छोटी-सी जेब में रख सकता हूं। दस हजार का नोट अपनी जेब मे रख सकता हूं। उस पर सरकारी मुहर भर लगी हो। आपकी सेवा पर व्यापकता की मुहर लगी होनी चाहिए। अगर कोई सेवा तो बहुत करे पर व्यापक दृष्टि से और वृत्ति से न करे तो उसकी कीमत व्यापक दृष्टि से की हुई छोटी सी सेवा की अपेक्षा कम ही मानी जायगी। व्यापक वृत्ति से की हुई अल्प सेवा अनमोल हो जाती है, यह उसकी खूबी है। आप और मै सब कोई सेवा कर सकें, इसीलिए परमात्मा की यह योजना है। चाहे जहाँ, चाहे जो कुछ भी कीजिए पर संकुचित दृष्टि से न कीजिए। उसमे व्यापकता भर दीजिए। यह व्यापकता आज के कार्य-कर्त्ताओ मे कम पाई जाती है। कुशल कार्यकर्त्ता आज संकुचित दृष्टि से काम करते हुए देख पड़ते हैं।

तिलक की दृष्टि व्यापक थी, इसलिए उनके चारित्र्य मे मिठास और आनंद है। हिन्दुस्तान के ही नहीं, बल्कि संसार के किसी भी समाज के वास्तविक हित का विरोध न करते हुए चाहे जहाँ सेवा कीजिए। चाहे वह एक गाँव की ही सेवा क्यों न हो, वह अनमोल है। किन्तु यदि बुद्धि व्यापक हो तो अपनी दृष्टि बनाइए। फिर देखिए आपके कर्मों मे कैसी स्फूर्ति का संचार होता है। कैसी बिजली का संचार होता है। तिलक मे यही व्यापकता थी। 'मै भारतीय हूँ' यह शुरू से ही उनकी वृत्ति रही। बंगाल में आंदोलन शुरू हुआ। उन्होने दौड़कर उसकी मदद की। बंगाल का साथ देने के लिए महाराष्ट्र को खड़ा किया। स्वदेशी का डंका बजवाया। "जब बंगाल लड़ाई के मैदान मे खड़ा है तो हमे भी जाना चाहिए। जो बङ्गाल का दुःख है वह महाराष्ट्र का भी

दुःख है"। ऐसी व्यापकता, सार्वराष्ट्रीयता तिलक में थी। इसीलिए पूने के निवासी होकर भी वे हिन्दुस्तान के प्राण बन गये। सारे देश के प्रिय बने। तिलक सारे भारतवर्ष के लिये पूजनीय हुए; इसका एक कारण यह था कि उनकी दृष्टि सार्वराष्ट्रीय थी, व्यापक थी।

लेकिन इसका एक दूसरा भी कारण था। वह था जनता की विशेषता। जनता का यह गुण कार्यकर्त्ताओं मे भी है, क्योंकि वे भी तो जनता के ही हैं। लेकिन उनको खुद इस बात का पता नहीं है। तिलक के गुण के साथ जनता के गुण का स्मरण भी करना चाहिए, क्योंकि तिलक अपने आपको जनता के चरणों की धूल समझते थे। जनता के दोष, जनता की दुर्बलता जनता की त्रुटियाँ, सब कुछ वे अपनी ही समझते थे। वे जनता से एकरूप हो गये थे, इसलिए जनता के गुणों का स्मरण तिलक के गुणों का स्मरण ही है।

यह तो जनता का गुण हैं वह हमारा कमाया हुआ नहीं है। हमारे महान्, पुण्यवान्, विशाल दृष्टि वाले पूर्वजों की यह देन है। यह गुण मानो हमने अपनी माँ के दूध के साथ ही पिया है। उन श्रेष्ठ पूर्वजों ने हमे यह सिखाया कि मनुष्य किस प्रांत का, किस जाति का है, यह देखने के बदले इतना ही देखो कि वह भला है या नहीं, वह भारतीय है या नहीं। उन्होंने हमें यह सिखाया कि भारतवर्ष एक राष्ट्र है। कई लोग कहते हैं कि अंग्रेजों ने यहाँ आकर हमे देशाभिमान सिखाया। तब कहीं हम राष्ट्रीयता से परिचित हुए। पर यह गलत है। एक राष्ट्रीयता की भावना अगर हमें किसी ने सिखाई है तो वह हमारे पुण्यवान् पूर्वजों ने। उन्हीं की कृपा से यह अनूठी देन हमें प्राप्त हुई है।

हमारे राष्ट्रर्षि ने हमें यह सिखावन दी कि 'दुर्लभं भारते जन्म'। 'दुर्लभं बंगेषु जन्म', 'दुर्लभं गुर्जरेषु जन्म', ऐसा उन्होंने नही कहा। ऋषि ने तो यही कहा कि 'दुर्लभं भारते जन्म'। काशी मे गगातट पर रहने वाले को किस बात की तड़प होती है? वह इसके लिए तड़पता है कि काशी की गंगा की बहंगी या काँवर भर कर कब रामेश्वर को चढ़ाऊँ? मानो काशी और रामेश्वर उसके मकान का आँगन और पिछवाड़ा हो। वास्तव में तो काशी और रामेश्वर मे पंद्रह सौ मील का फासला है, परन्तु आपको आपके श्रेष्ठ ऋषियो ने ऐसा वैभव दिया है कि आपका आँगन पंद्रह सौ मील का है। रामेश्वर मे रहने वाला इसलिए तड़पता है कि समुद्र का जल काशी-विश्वेश्वर के मस्तक पर चढ़ाऊँ। वह रामेश्वर का समुद्र-जल काशी तक ले जायगा। कावेरी और गोदावरी के जल मे नहाने वाला भी 'जय गंगे', 'हर गंगे' ही कहेगा। गंगा सिर्फ काशी मे ही नहीं, यहाँ पर भी है। जिस बर्तन मे हम नहाने के लिए पानी लेते हैं उसे भी गंगाजल (गंगालय) नाम दे दिया है। कैसी व्यापक और पवित्र भावना है यह! यह भारतीय भावना है।

यह भावना आध्यात्मिक नही, किन्तु राष्ट्रीय है। आध्यात्मिक मनुष्य 'दुर्लभं भारते जन्म' नही कहेगा। वह कुछ और ही कहेगा। जैसा कि तुकाराम ने कहा, 'आमुचा स्वदेश। भुवनत्रया मध्ये वास ॥' (स्वदेशो भुवनत्रयम्) उन्होंने आत्मा की मर्यादा को व्यापक बना दिया। सारे दरवाजों, सारे किलो को तोड़ कर आत्मा को प्राप्त किया। तुकाराम के समान महापुरुषों ने, जो आध्यात्मिक रंग से रंगे हुए थे, अपनी आत्मा को स्वतंत्र संचार करने दिया। 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' इस भावना से प्रेरित होकर, सारे भेद-भावो को पार कर जो सर्वत्र चिन्मयता के दर्शन कर सके वे धन्य हैं। लोग भी समझ गये

कि ये सारे विश्व के हैं इनकी कोई सीमा नहीं है। परन्तु 'दुर्लभं भारते जन्म' की जो कल्पना ऋषियो ने की वह आध्यात्मिक नही, राष्ट्रीय है।

वाल्मीकि ने अपनी रामायण के प्रारंभिक श्लोकों मे राम के गुणों का वर्णन किया है। राम का गुणगान करते हुये राम कैसे थे इसका वे यो वर्णन करते हैं कि, 'समुद्र इव गाम्भीर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव'—"स्थिरता ऊपर वाले हिमालय जैसी और गांभीर्य पैरों के निकटवाले समुद्र जैसा।" देखिये, कैसी विशाल उपमा है! एक साँस मे हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक के दर्शन कराये। पाँच मील ऊँचा पर्वत और पाँच मील गहरा सागर एकदम दिखाये। तभी तो यह रामायण राष्ट्रीय हुई। वाल्मीकि के रोम-रोम में राष्ट्रीयत्व भरा हुआ था, इसलिये वे सार्वराष्ट्रीय रामायण रच सके। उनकी रामायण संस्कृत में है तो भी सब की आदरणीय है। वह जितनी महाराष्ट्र मे प्रिय है उतनी ही मद्रास की तरफ केरल मे भी है। श्लोक के एक ही चरण में उत्तर भारत और दक्षिण का समावेश कर दिया। विशाल और भव्य उपमा !

हमसे कोई पूछे कि तुम कितने हो, तो हम तुरन्त बोल उठेंगे, हम पैंतीस करोड़ बहन-भाई हैं। अंग्रेज से पूछो तो वह चार करोड़ बतलायेगा। फ्रांसीसी सात करोड़ बतलायेगा। जर्मन छः करोड़ बतलायेगा। बेलजियन साठ लाख बतलायेगा। यूनानी आध करोड़ बतलायेगा। और हम पैंतीस करोड़। ऐसा फर्क क्यों हुआ? हमने इन पैंतीस करोड़ को एक माना। उन्होंने नहीं माना। सच पूछो तो जर्मनों की भाषा और फ्रांसीसियों की भाषा अधिक विसदृश नहीं है, जैसी मराठी और गुजराती है। यूरोप की भाषाएँ लगभग एक सी हैं। उनका धर्म भी समान है। भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में परस्पर रोटी-बेटी-व्यवहार भी होता

है, लेकिन फिर भी उन्होंने यूरोप के अलग-अलग टुकड़े कर डाले ! हिन्दुस्तान के प्रांतो ने अपने को अलग-अलग नहीं माना। यूरोप के लोगों ने ऐसा मान लिया। हिन्दुस्तान भी तो रूस को छोड़ बाकी के सारे यूरोप के बराबर एक खंड ( महाद्वीप ) ही है। लेकिन हमने भारत को एक खंड, यानी अनेक देशों का समुदाय न मानकर भारतवर्ष के नाम से सारा एक ही देश माना, एक राष्ट्र माना।

उन अभागे यूरोप वासियो ने सारा यूरोप एक नही माना। उन्होने यूरोप को एक खंड ( महाद्वीप ) माना। उसके छोटे-छोटे टुकड़े किए। एक-एक टुकड़े को अपना मान लिया और एक दूसरे से घनघोर युद्ध किये। पिछले महासमर को ही ले लीजिए। लाखो लोग मरे। वे एक दूसरे से लड़े, मगर आपस में नही लड़े। यह कुसूर उन्होने नहीं किया। लेकिन हमने भारत को एक राष्ट्र मान लिया और हम आपस मे लड़े।

अंग्रेज या यूरोपीय इतिहासकार हमसे कहा करते है कि "तुम आपस मे लड़ते रहे, अंतस्थ कलह करते रहे।" आपस मे लड़ना बुरा है, यह तो मै भी मानता हूँ। लेकिन यह दोष स्वीकार करते हुये भी मुझे इस आरोप पर अभिमान है। हम लड़े, लेकिन आपस में। इसका अर्थ यह हुआ कि हम एक है। यह बात इतिहासकारो को भी मंजूर है। उनके आक्षेप मे ही यह स्वीकृति आ गई है। कहा जाता है कि यूरोपीय राष्ट्र एक दूसरे से लड़े, लेकिन अपने ही देश में आपस में नहीं लड़े। लेकिन इसमे कौन सी बड़ाई है। एक छोटे से मानव-समुदाय को अपना राष्ट्र कहकर यह शेखी बघारना कि हमारे अंदर एकता है, आपस मे फूट नहीं है, कौन-सी बहादुरी है ? मान लीजिए कि मैंने अपने राष्ट्र की 'मेरा राष्ट्र यानी मेरा

शरीर', इतनी संकुचित व्याख्या कर ली; तो आपस में कभी युद्ध ही न होगा। हाँ, मै ही अपने मुँह पर चट से एक थप्पड़ जड़ दूँ तो अलबत्ता लड़ाई होगी। परन्तु 'मै ही मेरा राष्ट्र हूँ' ऐसी व्याख्या करके मैं अपने भाई से, माँ से, किसी से भी लड़ूँ, तो भी यह आपस की लड़ाई नही होगी क्योंकि मैंने तो अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर को ही अपना राष्ट्र मान लिया है। सारांश, हम आपस में लड़े यह अभियोग सही है, परन्तु वह अभिमानास्पद भी है, क्योंकि इस अभियोग मे ही अभियोग लगाने वाले ने यह मान लिया है कि हम एक है, हमारा एक ही राष्ट्र है। यूरोप के अभागो ने इस कल्पना का विनाश किया। हमें उसकी शिक्षा दी गई है। इतना ही नहीं वह हमारी रग-रग मे पैठ गई है। हम पुराने जमाने में आपस में लड़े, तो भी यह एक राष्ट्रीयता की भावना आज भी विद्यमान है। महाराष्ट्र ने पंजाव पर, गुजरात और वंगाल पर चढ़ाइयां कीं, फिर भी यह एक राष्ट्रीयता की, आत्मीयता, की भावना नष्ट नहीं हुई।

जनता के इस गुण की बदौलत तिलक सब प्रांतों मे प्रिय और पूज्य हुये। तिलक-गाँधी तो अलौकिक पुरुष हैं। सब प्रांत उन्हें पूजेंगे ही। परन्तु राजगोपालाचार्य, जमना लाल जी आदि तो साधारण मनुष्य हैं। लेकिन उनकी भी सारे प्रान्तों मे प्रतिष्ठा है। पंजाब, महाराष्ट्र, कर्नाटक उनका आदर करते हैं। हमें उसका पता भले ही न हो, लेकिन एक राष्ट्रीयता का यह महान गुण हमारे खून में ही घुल-मिल गया है। हमारे यहाँ एक प्रांत का नेता दूसरे प्रान्त में जाता है लोगों के सामने अपने विचार रखता है। क्या यूरोप में यह कभी हो सकता है? जरा जाने दीजिये मुसोलिनी को रूस में फासिज्म पर व्याख्यान देने। लोग उसे पत्थर मार-मार कर कुचल डालेंगे या फाँसी

पर लटका देंगे। हिटलर और मुसोलिनी जब मिलते थे तो कैसा जबरदस्त बन्दोबस्त किया जाता था, कैसी चुपचाप गुप्त रूप से मुलाकात होती थी। मानो दो खूनी आदमी किसी साजिश के लिये एक दूसरे से मिल रहे थे। किले परकोटे दीवारें सब तरफ खड़ी करके सारे यूरोप मे द्वेष और मत्सर फैला दिया है इन लोगो ने। पर हिन्दुस्तान मे ऐसी बात नहीं है। तिलक-गांधी को छोड़ दीजिये। ये लोकोत्तर पुरुष हैं। किन्तु दूसरे साधारण लोगो का भी सर्वत्र आदर होता है। लोग उनकी बातें ध्यान से सुनते हैं। ऐसी राष्ट्रीय भावना ऋषियों ने हमे सिखाई है। समाज और जनता मे सर्वत्र इसका असर मौजूद है। अज्ञात रूप से वह हमारी नस-नस मे विद्यमान है।

हमें इस गुण का पता नहीं था। आइये, अब ज्ञानपूर्वक हम उससे परिचय कर लें। आज तिलक का स्मरण सर्वत्र किया जायगा। उनके ब्राह्मण होते हुये भी, महाराष्ट्रीय होते हुये भी, सब जनता सर्वत्र उनकी पूजा करेगी, क्योकि तिलक की दृष्टि व्यापक थी। वह सारे भारतवर्ष का विचार करते थे। वह सारे हिन्दुस्तान से एकरूप हो गये थे। यह तिलक की विशेषता है। भारत की जनता भी प्रांताभिमान आदि का ख्याल न करती हुई गुणों को पहचानती है। यह भारतीय जनता का गुण है। इन दोनो के गुणो का यह चमत्कार है कि तिलक का सर्वत्र सब लोग स्मरण कर रहे है। जैसे एक ही आम की गुठली से पेड़, शाखा और आम पैदा होते है, उसी प्रकार एक ही भारत माता के बाह्यतः जुदा-जुदा पुत्र दिखाई देते हैं—कोई क्रोधी, कोई स्नेही। फिर भी मीठे और मुलायम आम जिस गुठली से पैदा होते है उसी से पेड़ का कठिन-धड़ भी पैदा होता है। इसी तरह हम ऊपर से कितने ही भिन्न क्यों न दिखाई दे, तो भी हम एक ही भारत माता की संतान हैं, यह कदापि न भूलना

चाहिये। इसे ध्यान में रख कर प्रेम-भाव बढ़ाते हुये सेवकों को सेवा के लिये तैयार होना चाहिये। तिलक ने ऐसी ही सेवा की। आशा है आप भी करेंगे।

## अभ्यास के लिये

१—लोकमान्य तिलक कौन थे ? उनके जीवन की संक्षिप्त कथा बताइए।

२—लोकमान्य के उन गुणों पर प्रकाश डालिए, जिनसे वे इतने महान् बन सके हैं।

३—भारतवासी लोकमान्य तिलक को क्यों भगवान् तिलक कहते हैं ?

४—इन शब्दों को वाक्यो में सयुक्त कीजिये :—

नैमित्तिक, व्यापक, विश्वेश्वर।

५—संधिविच्छेद कीजिये—

विश्वेश्वर, रामेश्वर, प्राताभिमान।

लोकमान्य के जिन गुणों का अनुसरण कर मनुष्य महान बन सके उन गुणों का [illegible]

—:o:—

# १४–पेनिसिलिन

[ लेखक—श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव ]

विज्ञान सम्बन्धी लेखो द्वारा हिंदी भाषा की श्री-वृद्धि करने वाले व्यक्तियो मे श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी० का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आप किशोरी रमण कालेज, मथुरा मे भौतिक विज्ञान के प्रसिद्ध अध्यापक थे। आपके लेखो का एक सग्रह "विज्ञान के चमत्कार" नाम से ज्ञान-मण्डल, काशी द्वारा प्रकाशित भी हो चुका है और एक दूसरी पुस्तक परमाणु शक्ति भी निकलने वाली है। इन लेखो का मुख्य उद्देश्य जनता क बाच विज्ञान के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करना है। आपकी भाषा सुबोध और सरल हिन्दी का निखरा स्वरूप है। आपकी विषय-प्रतिपादन की शैली अत्यन्त ही आकर्षक है। प्रस्तुत 'पेनिसिलिन' पाठ 'विज्ञान के चमत्कार' नामक आपकी पुस्तक से ही उद्धृत किया गया है।

औषधि विज्ञान के इतिहास मे सम्भवत: 'पेनिसिलिन' का आविष्कार एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण घटना है। समस्त कीटाणु नाशक औषधि मे 'पेनिसिलिन' का स्थान सर्वोपरि है। बीसियों प्राणनाशक व्याधियो के कीटाणुओं को यह निश्चय रूप से तथा कम से कम समय मे नष्ट कर सकता है। अन्य कीटाणु-नाशक औषधियो के प्रयोग के उपरांत रोगी पर उसके कुछ हानिकर प्रभाव रह जाते है किन्तु पेनिसिलिन इस दोष से सर्वथा मुक्त है।

पेनिसिलिन के आविष्कार की कहानी स्वयं बड़ी रोचक है।

लगभग १७ वर्ष पूर्व १९२९ में सेन्ट मेरी अस्पताल लन्दन के प्रोफेसर एलेक्जेन्डर फ्लेमिंग 'कार्बंकल' का तथा रुधिर को विषाक्त बनाने वाले कीटाणुओं का अध्ययन कर रहे थे। टेस्ट-ट्यूब के अन्दर इन्ही कीटाणुओं को उत्पन्न करने का प्रयोग ये कर रहे थे। इस सिलसिले मे थोड़ी-थोड़ी देर के उपरान्त प्रोफेसर फ्लेमिग टेस्ट-ट्यूब को खोलकर अनुवीक्षण-यन्त्र द्वारा कीटाणुओं का निरीक्षण करते थे। हवा मे फफूंद उत्पन्न करने वाले कुछ कीटाणु भीतर पहुँच गये। फलस्वरूप एक दिन आपने देखा कि एक टेस्ट-ट्यूब के अन्दर मखमली फफूँद सी लग गई थी। अनुवीक्षण-यन्त्र द्वारा ध्यान से परीक्षा करने पर उन्होंने पाया कि फफूॅद के चारों ओर के कीटाणु तेजी के साथ विनष्ट होते जा रहे थे। उन्होने सोचा कि अवश्य ही इस फफूँद में कुछ ऐसे तत्व मौजूद है जो इन कीटाणुओ के लिये विशेष रूप से घातक साबित्त होते हैं। इसी पदार्थ को पेनिसिलिन का नाम दिया गया। तदुपरान्त प्रोफेसर फ्लेमिग ने इस फफूंद का थोड़ा-सा भाग तार के टुकड़े की सहायता से बाहर निकाला और उसे एक दूसरे टेस्ट-ट्यूब मे विशुद्ध अवस्था में बढ़ने के लिये रख दिया। फिर प्रयोगो द्वारा उन्होने यह दिखलाया कि जिस द्रव मे यह फफूंद पैदा हुई उसी के अन्दर 'पेनिसिलिन' का निर्माण हुआ और फफूंद का कीटाणु-नाशक गुण इसी पेनिसिलिन के कारण है।

किन्तु उन दिनों पेनिसिलिन विशुद्धावस्था में तैयार नहीं की जा सकी थी तथा वह गाढ़े रूप में भी प्राप्त न हो सकी। इसीलिये पूरे दस वर्ष तक इस रामबाण औषधि का पूरा फायदा हम उठा न पाये थे। बाद में आक्सफोर्ड के प्रोफेसर फ्लोरे ने पेनिसिलिन को गाढ़ा बनाने की विधि मालूम की और तभी प्रयोगों द्वारा उन्होंने प्रमाणित किया कि गाढ़ी अवस्था की

पेनिसिलिन का प्रयोग रोग-कीटाणुओं का नाश करता है साथ ही रोगी पर यह किसी प्रकार का हानिकारक प्रभाव नही डालता। युद्ध के दौरान मे पेनिसिलिन का सर्व-प्रथम प्रयोग शरीरागो के घाव को कीटाणु रहित करके उन्हे स्वस्थ रखने के निमित्त हुआ था।

तदुपरान्त आक्सफोर्ड के प्रोफेसर फ्लोरे ने चूहों के शरीर मे पेनिसिलिन को द्रव के रूप में प्रविष्ट कराकर उनके कीटाणु नाशक गुण को साबित किया। सुई द्वारा प्रोफेसर फ्लोरे ने पेनिसिलिन के इंजेक्शन की विधि निकाली। सन् १६४१ मे इस सिलसिले में प्रोफेसर फ्लोरे ने दस ऐसे मनुष्यो को चुना, जिनके रोग 'सल्फो नामाइड' द्वारा भी दूर न हो सके थे। पेनिसिलिन के प्रयोग से इन सभी व्यक्तियो को लाभ हुआ। प्रोफेसर फ्लोरे अब पेनिसिलिन निर्माण के लिये परामर्श देने के लिये अमेरिका आमंत्रित किये गये। शीघ्र ही अमेरिका मे एक बड़े पैमाने पर पेनिसिलिन तैयार करने के लिये फैक्टरियाँ खुल गई और सन् १६४३ मे सर्वत्र मित्र राष्ट्रो की सेना मे आहत तथा बीमार सैनिकों की औषधि उपचार के लिये पेनिसिलिन का प्रयोग प्रचुरता से होने लगा।

अधिक पेनिसिलिन तैयार करने के लिये काफी झंझटो का सामना करना पड़ता है, और देर भी लगती है। चीनी के शर्वत पर फफूंद धीरे-धीरे हफ्तो उगाया जाता है। इसके लिये खास ढंग के कॉच के वर्तन (फलास्क) का प्रयोग किया जाता है। फलास्क के मुँह पर रुई रख देते हैं ताकि फफूँद उत्पन्न करने वाले कीटाणु अन्दर जाकर फफूँद का निर्माण कर सकें। लगभग १५ दिनो तक फफूँद बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार नमदे की तरह एक मोटी तह फफूँद की शर्वत पर जम जाती है। इस स्टेज पर नीचे तह मे पेनिसिलिन समाविष्ट हो जाती

है। तदुपरान्त इस द्रव से पेनिसिलिन शुद्धावस्था में प्राप्त की जाती है। फिर इसे गाढ़ा बनाया जाता है। द्रव से पेनिसिलिन प्राप्त करने तथा उसे गाढ़ा बनाने के लिये शीघ्रता तथा सावधान की आवश्यकता पड़ती है। अन्यथा द्रव से पेनिसिलिन अपने आप विनष्ट हो जाता है।

पेनिसिलिन के गुणो के सम्बन्ध मे किए गए नूतनतम अनुसंधानो से पता चला है कि गर्दन तोड़ ज्वर, कार्वंकल न्यूमोनिया, विषाक्त गैस के प्रभाव, उपदंश तथा विषाक्त चोट के लिए पेनिसिलिन रामबाण औषधि साबित होती है। किन्तु राजयक्ष्मा, मोतीझारा ज्वर, पेचिश तथा मलेरिया के कीटाणुओं पर पेनिसिलिन का प्रभाव नहीं पड़ता।

साधारणतः पेनिसिलिन घोल के रूप मे शरीर के अन्दर इंजेक्शन द्वारा प्रविष्ट कराया जाता है। इंजेक्शन या तो रक्तवाहिनी शिराओं मे दिया जाता है, या उसे जाँघों के पिछले भाग की मांसपेशियों मे डाला जाता है। एक बार पेनिसिलिन प्रविष्ट करा देने पर लगभग तीन घंटे तक वह शरीर मे रहता है। फिर मूत्र के रास्ते वह बाहर निकल जाता है। अतः पेनिसिलिन द्वारा उपचार करने मे पेनिसिलिन की प्रचुर मात्रा की आवश्यकता पड़ती है, बार-बार पेनिसिलिन का इंजेक्शन देना पड़ता है। एक बार के इंजेक्शन के लिये १५,००० यूनिट पेनिसिलिन की जरूरत होती है।

विषाक्त हुए चोट ( सेप्टिक ) पर मरहम के साथ पेनिसिलिन मिला कर लगाते है। किन्तु गहरी चोट में भीतर तक मरहम का पेनिसिलिन पहुँच नहीं पाता। अतः ऐसी दशा में इंजेक्शन की ही शरण लेनी पड़ती है। मुँह के रास्ते पेनिसिलिन खाने के लिए साधारणतः नहीं दिया जाता, क्योंकि मुँह के

अन्दर तथा पेट में पाये जाने वाले अम्लतत्त्व के संसर्ग मे आने पर तुरन्त ही पेनिसिलिन नष्ट हो जाती है।

गर्दन तोड़ ज्वर मे पेनिसिलिन का इंजेक्शन सीधे रीढ़ के अन्दर दिया जाता है। इस दशा मे रक्त-वाहिनी शिराओ मे इंजेक्शन देने से विशेष लाभ नही होता, क्योकि रुधिर मे से रीढ़ के अन्दर पेनिसिलिन आसानी से नही पहुँच पाती।

पेनिसिलिन चिकित्सा मे इस बात का विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि हर बार शरीर के अन्दर औषधि की पूरी मात्रा पहुँचे, क्योकि कुछ बीमारियो के कीटाणु पेनिसिलिन की अपर्याप्त मात्रा के ससर्ग मे आने पर एक प्रकार की सुरक्षित अवस्था अख्तियार कर लेते है और तब पेनिसिलिन का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

हड्डी टूटने अथवा शरीरांगों के विक्षत हो जाने पर भी पेनिसि-लिन का प्रयोग विशेष उपयोगी साबित होता है।

पेनिसिलिन साधारणत: रबर की कार्क लगी, छोटी-छोटी शीशियों मे आती है। प्रत्येक शीशी मे १ लाख यूनिट पेनिसि-लिन मौजूद रहती है। इसे शुद्ध परिस्रवित पानी मे मिला कर या नमक के घोल मे मिला कर इंजेक्शन के लिये प्रयोग करते हैं। रीफ्जिरेटर के अंदर बर्फ के टेम्प्रेचर पर ही इसे रखा जाता है अन्यथा इसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। पाउडर के रूप में भी पेनिसिलिन फर्म द्वारा तैयार की जाती है। इस पाउडर को नमक के घोल मे मिला कर इजेक्शन के लिए तैयार कर लेते हैं।

पेनिसिलिन का रासायनिक विश्लेषण इस उद्देश्य से किया जा रहा है कि उसे रसायनशाला मे कम से कम समय में कृत्रिम साधनो द्वारा तैयार किया जा सके। अचूक होने के नाते

पेनिसिलिन की माँग बहुत ज्यादा है। किन्तु अमेरिका पर्याप्त मात्रा मे पेनिसिलिन तैयार कर सकने मे असमर्थ है। हमारे देश में भी सायन्टिफिक-रिसर्च-इन्सटीट्यूट (Scientific-Research-Institute) में प्रचुर मात्रा मे पेनिसिलिन तैयार करने के प्रयत्न किये जा रहे है। जिस दिन वैज्ञानिक कृत्रिम ढंग पर पेनिसिलिन तैयार कर पायगा, उस दिन से गर्दन तोड़ ज्वर, कार्वंकल, न्यूमोनिया सरीखे घातक रोगों से मानव जाति को सदा के लिए छुटकारा मिल जायगा।

## अभ्यास के लिये

१—पेनिसिलिन क्या है ? यह इतनी उपयोगी क्यों है ?
२—पेनिसिलिन का आविष्कार किस प्रकार हुआ ?
३—प्रोफेसर फ्लोरे ने पेनिसिलिन को और अधिक उपयोगी किस-प्रकार बना दिया ?
४—किन-किन रोगों मे पेनिसिलिन रामबाण सिद्ध हुआ है ?
५—पेनिसिलिन चिकित्सा मे किस बात का ध्यान रखना पड़ता है ?

# १५—फाँसी

[ लेखक—सेठ गोविद दास जी ]

सेठ गोविंद दास जी हिन्दी के सुप्रसिद्ध नाटककार है। आप जबलपुर के निवासी तथा कर्मठ देशसेवी हैं। देशसेवा के परिणामस्वरूप कई बार कारागार भी जा चुके हैं। हिन्दी भाषा के प्रति आपका प्रगाढ़ प्रेम है। हिन्दी को राष्ट्र भाषा के पद पर बिठाने मे आपने प्रशसनीय कार्य किया है। आप विधान सभा के सदस्य हैं; और आजकल लोक सभा के सदस्य हैं।

हिन्दी के आधुनिक नाटककारो मे आपका गौरवपूर्ण स्थान है। आपके नाटकों, और एकाकी नाटकों ने एक नवीन भाव-धारा बहाई है। आपके सामाजिक और ऐतिहासिक नाटक भारतीय समाज और सभ्यता की ओर उन्मुख करने मे अधिक सहायक हैं। नाटकीय कला की दृष्टि से भी आपके नाटक अपूर्व है। आपके नाटको में मानव हृदय के द्वद्व का अच्छा चित्रण मिलता है। पात्रों के कथनोपकथन मे स्वाभाविकता की पुट रहती है।

आपकी भाषा सरल, और कलापूर्ण है। आपकी सरल शैली मे भावो को प्रकट करने की अपूर्व क्षमता है। भाषा शुद्ध हिन्दी है, और उसमे संस्कृत के तत्सम, किंतु व्यावहारिक शब्दो की प्रचुरता है।

आपके ग्रन्थों में हर्ष, शशिगुप्त, स्पर्धा, और कर्त्तव्य इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं।

**पात्र**—कवि, पूँजीपति, मजदूर.

**स्थान**—जेल का एक सेल

**समय**—रात्रि का तीसरा

[ सैल के तीन तरफ की पत्थर की दीवाले दिखती हैं। बाईं ओर की दीवाल के ऊपर की तरफ एक वैंटीलेटर है, और दाहिनी तरफ की दीवाल में एक लोहे का दरवाजा। दरवाजा बन्द है। फर्श पर कब्रों के सदृश तीन लंबे चौतरे हैं। इन पर जेल के बिछौने बिछे हैं। तीनों चौतरों पर कैदियों के कपड़े पहने हुए कवि, पूँजीपति, और मजदूर बैठे हुए हैं। कवि गौर वर्ण, पूँजीपति गेहुँएँ रंग और मजदूर कुछ साँवले रंग का है। तीनों की अवस्था लगभग तीस वर्ष की है। ]

कवि—हाँ, हाँ, पूँजीपति की और श्रमजीवी की, सृष्टि एक ही तत्व है।

पूँजीपति—एक ही तत्त्व है!

कवि—सर्वथा! और वह कैसा है, जानते हैं?

मजदूर—कैसा?

कवि—वह सत्य है, शिव है, सुंदर है। अनेक रूप में परिणत होकर वह अपनी सुन्दरता बढ़ाता है। विश्व के दो महान आलम जो हमें दिखते हैं—आकाश और समुद्र—आकाश में सूर्य, चंद्र, अगणित तारे फिर कभी-कभी उठने वाले बादल, उनके भिन्न-भिन्न रूप अलग-अलग रंग। उनमें बिजली, इंद्र-धनुष, कभी-कभी धूप में बरसती हुई फुहार और उसमें भी इंद्र-धनुष के से रंग। सागर में बड़ी छोटी लहरें, उसका फेन और चांदनी में उसकी चमक। पृथ्वी पर नित्य ऊषा और संध्या।

परिवर्तन होती ऋतुएँ—विशेषकर वर्षा और वसंत। उसमें पर्वत, वन, नदियाँ, निर्झर, तड़ाग। लहलहाते हरे-हरे खेत, कभी नवपल्लवों तथा कुसमो से गुच्छों से युक्त डोलते हुए वृक्ष। फिर जीव सृष्टि—चौकड़ी भरते मृग, जुगनू और वीर-बहूटी नाना भाँति के गाते हुए विहग और पानी मे भाँति-भाँति की तैरती हुई मछलियाँ और इन सब से श्रेष्ठ मनुष्य—उसके श्रेष्ठतम कलात्मक कर्म विशाल—मूर्तियाँ, ललित चित्र, सुन्दर संगीत और सर्व श्रेष्ठ काव्य; और ये हमारे कार्य यदि किसी इष्ट को सामने रख कर किये जायँ।

मजदूर—तब तो क्या पूछना है।

कवि—बशर्ते वह इष्ट सुन्दर हो। स्त्री के लिए पुरुष और पुरुष के लिए स्त्री! मेरा वह इष्ट कितना सुन्दर था!

मजदूर—बहुत सुन्दर था कवि जी?

कवि—ओह! क्या कहूँ। अरे इस एक तत्व ने उस शरीर में अनेक रूप में परिवर्तित हो सारी सृष्टि के सौंदर्य का उसे प्रतीक बना दिया था। उसमें क्या नहीं था! आकाश की विशालता थी, समुद्र की तरंगें थीं। तारों के स्थान पर उनके चमकते हुये भूषण थे। बादलो के सदृश रंग बदलते हुए वह कपड़े पहनती थी। उदय और अस्त होते हूये सूर्य की ही नहीं चन्द्र की भी उसके मुँह में आभा थी। जैसी ऋतु आती, वैसी वह हो जाती। वर्षा में वृक्ष पर झूलती हुई वह इंद्र-धनुष सी जान पड़ती, और वसंत में कुसुम क्यारियों में केलि करती हुई उन कुसुमो के सार के सदृश। चौकड़ी भरते मृगों और कलोल करती हुई मछलियो के समान उसके

नेत्र थे। बीरबहूटी और जुगनू उसके ललाट पर लगी हुई ईंगुर की टिकली तथा उसके चारों ओर की केसर पर बुरकाये हुये रूपहरी बादल में दिख जाती थीं। गाते हुये विहगों के सदृश उसकी बोली के भिन्न-भिन्न स्वर थे। मैंने उसकी मूर्तियाँ बनायी थीं, चित्र बनाये थे, उसीके गीत गाता था, उसी पर काव्य लिखता था।

पूँजीपति—ऐसी सुन्दर स्त्री के लिये किसी भी सहृदय कवि का यह करना स्वाभाविक ही था।

कवि—सर्वथा, और इसके बाद एक बात और स्वाभाविक थी।

पूँजीपति—क्या ?

कवि—अंत में एकीकरण का प्रयत्न। विप्रलंभ क्या सदा विप्रलंभ रह सकता है। विप्रलंभ के बाद क्या संयोग की इच्छा अस्वाभाविक है।

पूँजीपति—कदापि नहीं, कदापि नहीं।

कवि—वही हुआ। संयोग के नाना प्रयत्न किये पर...

मजदूर—पर इसमें सफलता नहीं मिली; क्यों ?

कवि—हाँ ? नहीं मिली और जब सफलता नहीं मिली, तब जो कुछ किया वह भी स्वाभाविक था।

पूँजीपति—क्या ?

कवि—बलात्कार ! मेरे लिये तो प्रलय का अवसर आ रहा था, प्रलय का ! यौवन का प्रलय ही यथार्थ में जीवन का प्रलय है। प्रलय के समय समुद्र बल पूर्वक ही तो पृथ्वी को अपनी लहरों से दबोचता है। मैंने वही किया और क्या ? उसे मार तो डाला डाक्टरों ने अस्पताल

मे, इस पर मुझे फाँसी ? (लबी सास लेकर ) क्या...क्या कहूँ ? कैसा. .कैसा यह कानून है ?

पूँजीपति—कवि जी मुझे फाँसी हुई है, पूँजी के कारण। पूँजी और फाँसी ! अरे जो विश्व की सारी हलचलों का साधन है, वह फाँसी का कारण। जीवन से मरण !

कवि—हाँ हाँ, आश्चर्य, महान आश्चर्य की बात है।

मजदूर—ऐसा।

कवि—इसमे भी कोई संदेह है ?

पूँजीपति—अजी पूँजी के बिना इस संसार मे क्या हो सकता है ? संसार के सभी बड़े-बड़े आविष्कार और कलाओ का निर्माण पूँजी से हुआ है, होता है, और होगा। अपनी पूर्व-जन्म की संचित पूँजी से पूर्व-जन्म के पुण्यात्मा और तपस्वी इस जन्म मे पूँजीपति होते हैं, और फिर भी वे कैसे कल्याणकारी कार्य करते हैं ?

कवि—हाँ, हाँ ! अनेक, विश्वहित के एक नहीं अगणित कार्य।

पूँजीपति—अवश्य कवि जी। शिक्षा के लिये दान देते हैं, जिससे नयी-नयी चीजो के निर्माण-कर्त्ताओं का निर्माण होता है। फिर जहाँ ये निर्माण-कर्त्ता निर्माण करते हैं, उन संस्थाओ को पूँजीपति ही तो स्थापित करते हैं। कला के उत्कर्ष के लिए भव्य भवन बनाते हैं, मूर्तियाँ बनवाते है, चित्र बनवाते है। संगीत और कवियो को प्रोत्साहन देते है।

कवि—अवश्य, अवश्य !

पूँजीपति—अरे सरकार भी अगर कोई अच्छा काम करती है, तो उसका श्रेय भी इन्हीं को तो है। यथार्थ में सरकार इन्ही की तो प्रतिनिधि है। इनसे गाँवों की जमीन न मिले, इनकी आमदनी पर इनकमटेक्स न प्राप्त हो, तो सरकार क्या कर सकती है ? फिर इनके मंदिर, इनकी धर्मशालाएँ, ( कुछ रुक कर ) इस पूँजी को सदा बढ़ाते रहना ही संसार का सब से महान् धर्म तथा इसमें जो बाधाएँ आवें उनका निराकरण सब से बड़ा कर्त्तव्य कर्म है।

मजदूर—ऐसा ?

कवि—( मजदूर की ओर देखकर ) इसमें कोई संदेह है ?

पूंजीपति—कवि जी, मेरे कारखाने में स्ट्राइक हुई। बोलिए उस स्ट्राइक को कैसे चलता रहने दे सकता था ? मजदूरों को समझाया, बुझाया, सभी तो किया; पर जैसे-जैसे समझाया उनका मिजाज बढ़ता ही गया, आखिर जब वे मार-काटपर उतारू हो गये तब मेरी पिस्तौल मारने के लिये नहीं, उन्हे भय दिखाने को चली जिससे निर्माण कार्य में बाधा न पहुंचे। कुछ गोलियाँ चल गईं। मजदूरों को हथियारों के लाईसेन्स न मिलकर जो पूँजीपतियों को मिलते हैं वह आखिर काहे के लिये ? पूँजी के बढ़ाने के महान् धर्म और उसके मार्ग की बाधाओं के निराकरण के कर्त्तव्य कर्म में यदि इन शस्त्रों का उपयोग नहीं हो सकता तो ये निरर्थक हैं : कीड़ों मकोड़ों के सदृश एक मजदूर मर गया। ( मजदूर की त्योरी चढ़ जाती है। ) अरे वह तो पुण्य था, मेरे जीवन का सबसे बड़ा पुण्य कार्य है ? उसपर मुझे फाँसी ! वाह रे कानून ! मेरी और उसकी एक ही औकात ?

मजदूर—पर पूँजीपति जी, बिना काम किये दुनिया मे क्या हो सकता है? संसार के बड़े-बड़े आविष्कार और कलाओ का विकास यथार्थ मे पूँजी का नहीं, मेहनत का फल है। पूर्व जन्म थोथी कल्पना है और पूर्व जन्म के कर्मों से अच्छे और बुरे जन्म होते है, यह पूँजीवाद को कायम रखने के लिए जनता को एक झूठे सिद्धान्त का पाठ पढ़ाना तथा धोखा देना है।

पूँजीपति—धोखा! इतने ज्ञानी और विचारशीलो का मत धोखा।

मजदूर—हाँ, हाँ, धोखा और बड़े से बड़ा धोखा। दुखियों के दुख उनके पूर्व जन्म के कर्मों के फल है; अतः उसके सुधार का यत्न फिजूल का काम है, यह सिद्ध करने को पूर्व जन्म, और उस जन्म के कर्म के सिद्धांत से सुंदर अन्य कोई सिद्धांत न निकाला जा सकता था। विश्व का सच्चा हित दान के धन से नहीं हो सकता था। वह सरकारी अधिकार से होता है। यह तब जब कि सरकार काम करने वालो की सरकार रहे, और उत्पत्ति तथा उत्पन्न की हुई संपत्ति का बँटवारा काम करने वालों की प्रतिनिधि उस सरकार के हाथ मे हो। महान् आविष्कार और कलाएँ ही नही, संसार का सुख ही इस पर निर्भर है। एक मनुष्य सुखी है और हजारो, लाखो, करोड़ों दुखी हो यह सामाजिक सङ्गठन तो अस्वाभाविक चीज है, और अस्वाभाविक चीज सदा थोड़े ही चल सकती है। जो पूँजीवाद अगणितो के दुख को कायम रख; कुछ के सुख का निर्माण करता है, उसका नाश ही सबसे बड़ा धर्म और इस काम में जो बाधाये आवें उनका निराकरण ही सबसे बड़ा कर्म है।

पूँजीपति—हरि, हरि, हरि, शिव, शिव, शिव।

मजदूर—मैंने एक ऐसे आदमी का अन्त कर दिया। मुझे क्यों फाँसी हो ? होनी तो नहीं चाहिये थी, पर इस समय के कानून........

[ दरवाजा खुलने की आवाज ]

कवि—तो... तो अब वक्त आ गया। हाय ! हाय !! अब वह आकाश, वह चाँदनी, वह जीव सृष्टि और...और ...वह गयी तो गयी...उसी के सदृश किसी दूसरी को ढूँढ़ता, सब...सब चले। अरे ! पतझड़ तो वसंत के पहले होती है, जीवन के इस वसंत के बीच यह पतझड़ कैसा ? प्रलय तो सृष्टि के पूर्ण विकास के बाद आता है। मेरा तो यौवन अभी विकसित हो रहा था। यह प्रलय कैसा ? हाय ! हाय ! यह अन्याय, यह जुल्म।

पूँजीपति—अभी तो न जाने मेरे कितने काम बाकी हैं ? मध्यभारत का कॉटनमिल अभी अधूरा पड़ा है। बिहार का शुगर का मिल इसी साल में चलना शुरू हुआ है। यू० पी० के पेपर मिल की अभी तो नींव पड़ी है। न जाने कितना...कितनी फैक्टरियाँ और कितने... कारखाने बनाने थे। लेक रोड के मकान की नींव खुद रही है। हिंदुस्तान के अच्छे शिल्पी को वह काम सौंपा है। उसकी चित्रकारी की व्यवस्था बाकी है। नरना-रायण के मन्दिर की प्रतिष्ठा शेष है। हरिद्वार की धर्मशाला का उद्यापन होना है।

मजदूर—कवि जी, आपको क्यों दुख हो रहा है ? सृष्टि एक ही तत्व है। उसी में तो आप मिलियेगा। यह तो

बन्धन मुक्ति है और पूँजीपति जी, आपको भी दुख नही होना चाहिए। पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों के फलस्वरूप ही तो पूँजीपति के घर में जन्म होता है। आपने मंदिर बनाये हैं, धर्मशाला बनवाई है, अपने जीवन का सब से बड़ा पुण्य कार्य आपने एक मजदूर की हत्या करके किया है। आपका नया जन्म तो अच्छा होगा। दुख तो मुझे होना था। पर जानते हैं! मुझे हर्ष है। एक खून चूसने वाले का खून कर मैने तो यह जन्म सफल कर लिया। फाँसी न होती तो अच्छा था। पृथ्वी का भार और घटाता, पर खैर इतना... इतना ही सही।

[ लोगो के आने की आहट होती है ]

कवि—अरे सारे भारतवर्ष के कलाकारों ने मुझे सबसे बड़ा उदीयमान कवि मान मुझे क्षमा करने के लिए दरख्वास्त दी थी। शायद...शायद मुझे छोड़ने के लिए ये लोग आ रहे है।

पूँजीपति—और...और मेरे बचाने के लिए न जाने कितना धन खर्च किया जा रहा है। शायद...शायद मुझे भी छोड़नेके लिए।

[ सैल का दरवाजा खुलता है। वरदी पहने हुए जेलर का कुछ वार्डस के साथ प्रवेश। ]

जेलर—तैयार...तैयार...हो जाओ, तुम लोग ईश्वर को याद करो।

[ कवि शून्य और कातर दृष्टि से सामने की ओर देखता है। पूँजीपति रोता है। और इन दोनों को देखकर मजदूर कहकहा लगा कर हँसता है। ]

## अभ्यास के लिये

१—इस एकाकी के कथानक को कहानी के रूप मे लिखो।

२—इस एकाकी के कौन-कौन से पात्र हैं, और विचार की दृष्टि से उनकी क्या विशेषता है ?

३—इस एकाकी के पात्रो के कथन पर विचार करो, और यह बताओ, कि कौन यथार्थवादी है, और क्यो ?

४—भावार्थ स्पष्ट करो:—

यौवन का प्रलय ही यथार्थ मे जीवन का प्रलय है, पूँजी विश्व की सारी हलचलों का साधन है।

—:०:—

# १६—हंस का नीर-क्षीर विवेक

[ लेखक—आचार्य प० महावीर प्रसाद द्विवेदी ]

आचार्य प० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी से प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी परिचित है। आपका जन्म रायबरेली के दौलतपुर ग्राम में सम्वत् १८६१ में हुआ। प्रारम्भ में आप जी० आई० पी० रेलवे मे हेडक्लर्क थे, और काफी वेतन पाते थे, किन्तु मातृभाषा हिन्दी की सेवा के हित आपने इस नौकरी को छोड़ 'सरस्वती' मासिक-पत्रिका का सपादन-भार स्वीकार किया। सवत् १९६० से १९७६ वि० तक आपने इस कार्य को बड़ी योग्यतापूर्वक निबाहा। इस बीस वर्ष के दीर्घ संपादन काल में आपने हिन्दी साहित्य की बहुमुखी सेवाये की। एक ओर तो आपने हिन्दी लेखकों के व्याकरण शिक्षक बनकर हिन्दी भाषा और गद्य शैली का रूप स्थिर किया और आलोचना-शास्त्र की नींव डाली; दूसरी ओर खड़ी बोली में कविता करने का पथप्रदर्शन कर अनेक कविरत्नों की सृष्टि की। वर्तमान हिन्दी के निर्माण का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् आप ही को है। द्विवेदी जी ही आधुनिक युग के आचार्य हैं।

आचार्य द्विवेदी की सत्तरवीं वर्षगाँठ हिन्दी ससार में बड़े समारोह से मनाई गई थी। इस शुभ अवसर पर 'नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी ने 'द्विवेदी-अभिनन्दन' नामक बृहद् ग्रन्थ समर्पण कर तथा प्रयाग के साहित्यकों ने द्विवेदी मेला की नींव डाल कर आचार्य जी के प्रति अगाध सम्मान एव कृतज्ञता का परिचय दिया।

द्विवेदी जी संस्कृत, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी प्रभृति भाषाओं के पडित, सुलेखक और उत्कृष्ट समालोचक एवं कवि हैं। 'रघुवंश', 'हिन्दी-

महाभारत', 'कुमारसम्भव', 'किरातार्जुनीय' आदि संस्कृत ग्रन्थो का, तथा 'वेकन-विचार-माला', 'शिक्षा', 'स्वाधीनता,' प्रभृति अंग्रेजी ग्रन्थों का सुन्दर अनुवाद किया है। आपके स्वतंत्र ग्रन्थों में—'अद्भुत अलाप', 'रसज्ञरंजन', 'साहित्यसीकर', 'विचित्र चित्रण' प्रभृति निबन्ध संग्रह तथा 'कालिदास की निरंकुशता' 'संपत्तिशास्त्र', 'हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति, आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। आपकी गद्य-शैली व्याकरणसम्मत, परिमार्जित और विषयानुकूल परिवर्तनशील है।

ओज और सुबोधता उसकी प्रधान विशेषता है। भाव प्रकाशन के भेद से उनके नाम व्यंगात्मक, विचारात्मक और गवेषणात्मक स्थिर किए गए हैं। आपका शब्द-भण्डार बडा विस्तृत है जिसमें संस्कृत के तत्सम, तद्भव, देशज आदि शब्द सम्मिलित हैं। व्यंग्य के लिये उर्दू के प्रचलित शब्दों का भी आप प्रयोग करते हैं।

साहित्य का यह महारथी हिन्दी की अभूतपूर्व सेवा कर सं० १९९५ वि० को परलोकवासी हुआ।

संस्कृत-साहित्य में हंस, पिक, भ्रमर और कमल की बड़ी धूम है। बिना इनके कवियो की कविता फीकी हो जाती है। कोई पुराण, कोई काव्य, कोई नाटक ऐसा नहीं जिनमें इनका जिक्र न हो। सब में कवियों ने एक न एक विशेषता भी रक्खी है। यथा—हंस; मिले हुये दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है; दूध पी लेता है और पानी छोड़ देता है। पिक अपने बच्चे कौओं के घोसलों में रख आता है और बड़े होने तक उन्हीं से उनकी सेवा कराता है। भ्रमर, आम की मंजरी से अतिशय प्रेम रखता है, पर चम्पे के पास तक नहीं जाता। कमल चन्द्रमा से द्वेष रखता है, उसकी विद्यमानता में वह कभी नहीं खिलता; पर सूर्य का वह परम भक्त है। इनमें से दो एक बातें तो निःसन्देह सही हैं, पर औरों के विषय में मतभेत है। उदा-

हरण के लिए हंस और उसके नीर-क्षीर विषयक विवेक को लीजिये।

संस्कृत काव्यों मे जगह-जगह पर यह लिखा हुआ है कि हंस में वह शक्ति है कि वह दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है। पर दूध और पानी को अलग-अलग करते उसे किसी ने नही देखा। शायद किसी ने देखा भी हो, पर इस विषय का कोई लेख कहीं नहीं मिलता। यह प्रवाद सात समुद्र पार करके अमेरिका पहुँचा। वहाँ के विद्वानो को हंस का यह अद्भुत गुण सुनकर आश्चर्य हुआ। पर वे लोग ऐसी-ऐसी बातों को चुपचाप मान लेने वाले नहीं। इस देश मे हंस-विषयक यह प्रवाद हजारो वर्षों से सुना जाता है। पर इसके सत्यासत्य की जाँच आज तक किसी ने नहीं की। यदि किसी ने की भी तो उसका फल कहीं लिपिबद्ध नही मिलता। अमेरिका मे हवार्ड नाम का एक विश्वविद्यालय है। उसमें लाँगमैन साहब एक अध्यापक है। आपने हंस के इस अलौकिक गुण की परीक्षा का प्रण किया। इस लिये आपने कई हंस मँगा कर पाले और अनेक तरह से उनकी परीक्षा की। पर नीर को क्षीर से अलग करने में उन्होने हंस को असमर्थ पाया, तो हंस के नीर-क्षीर विवेक-विषयक वाक्यो की क्या संगति हो? इसके विषय मे दो एक वाक्य देखिये—

नीर-क्षीर-विवेके हंस्यालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वेऽस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥

—भामिनीविलास।

हे हंस, यदि क्षीर को नीर से अलग कर देने का विवेक तू ही शिथिल कर देगा तो, फिर इस जगत् मे अपने कुलव्रत का पालन और कौन करेगा?

योहनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षति च द्विजम्।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यतः॥

—शकुन्तला।

हंस जिस तरह क्षीर ग्रहण कर लेता है, और उससें मिला हुआ पानी पड़ा रहने देता है, वैसे ही यह भी वध करने योग्य मुझे मारेगा और रक्षणीय द्विज की रक्षा करेगा।

प्राज्ञास्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचःशुभाऽशुभाः।
गुणवद्वाक्यमादत्ते हंस क्षीरमिवाम्भसः॥

—महाभारत—आदिपर्व

लोगो के मुँह से भली-बुरी बातें सुनकर बुद्धिमान आदमी अच्छी बात को वैसे ही ग्रहण कर लेता है जैसे हंस जल में से दूध को ग्रहण कर लेता है।

इसका कारण टीकाकार सायनाचार्य ने यह बतलाया है कि जल-मिश्रित दूध के बर्तन मे हंस जब अपनी चोंच डालता है, तब मुख-गत रस-विशेष का योग होते ही जल और दूध अलग-अलग हो जाते हैं, या अलग-अलग जान पड़ते हैं।

इस पिछले अवतरण से यह सूचित होता है कि किसी-किसी की राय मे हंस के मुंह में एक प्रकार का रस होता है। उस रस का मेल होने से पानी और दूध अलग-अलग हो जाते हैं। यदि इस रस मे खट्टापन हो तो दूध का जम कर दही हो जाना संभव है। पर इसके लिए कुछ समय चाहिये। क्या हंस की चोंच दूध के भीतर पहुँचते ही दूध जम जाता होगा? संभव है, जम जाता हो, पर यह बात समझ मे नहीं आती कि पात्र में भरे हुए जल-मिश्रित दूध मे से जल को अलग करके दूध को हंस किस तरह पी लेता है। अध्यापक लांगमैन की परीक्षा से तो यह बात सिद्ध नहीं हुई।

अमेरिका के एक और विद्वान् ने हंस के नीर-क्षीर-विषयक प्रवाद का विचार किया है। आपका नाम है डाक्टर काव्मस। आप वाशिंगटन मे रहते है। आपका मत है कि हंस के मुँह की बनावट ऐसी है कि जब यह कोई चीज खाता है, तब उसका रस-मय पतला अंश उसके मुँह के बाहर गिर पड़ता है और कड़ा अंश पेट मे चला जाता है। आपके मत मे दूध से मतलब इसी कड़े अंश से है। बहुत रसीली चीज के कठोर अंश का बाहर बह आना सम्भव जरूर है पर किसी चीज के कठोर अंश का अर्थ दूध करना हास्यास्पद है।

अच्छा, हंस रहते कहाँ है और खाते क्या हैं? हंस बहुत करके इसी देश मे पाये जाते हैं। उनका सबसे प्रिय निवास-स्थान मानसरोवर है। यह सरोवर हिमालय पर्वत के ऊपर है। सुनते हैं, यह तालाब बहुत सुन्दर है। इसका जल मोती के समान निर्मल है। यही हंस अधिकता से रहते है और यहाँ वे अंडे देते हैं। जाड़ा आरम्भ होते ही, शीताधिक्य के कारण मानसरोवर छोड़ करके नीचे चले आते है, पर विन्ध्याचल के आगे वे नही बढ़ते। विंध्य और हिमालय के बीच ही मे निर्मल जल-राशि-पूर्ण तालाबों और नदियो के किनारे वे रहते है। चैत्र-वैशाख में वे हिमालय की तरफ चले जाते है। जलाशयों मे कमलो की अधिकता होती है, वे हंसो को अधिक प्रिय होते हैं। वहीं वे अधिक रहते हैं। उनके शरीर का रंग सफेद होता है और उनके पैर लाल होते हैं। चोंच का रंग भी लाल होता है, डील-डौल उनका बतक से कुछ बड़ा होता है।

यदि हंस दूध पीते हैं, तो दूध उनको मिलता कहाँ से है? मानसरोवर मे उन्होने गायें या भैंसे तो पाल नहीं रखी और न हिंदुस्तान ही के किसी तालाब या नदी में उनके दूध पीने की

कोई संभावना है! इससे गाय-भैंस का दूध पीना हंसो के लिए असंभव-सा जान पड़ता है। कोई-कोई कवि-जन कहते हैं कि हंस मोती चुगते हैं। पर मोती भी मानसरोवर मे नहीं पैदा होती। यदि उसमे मोतियो का पैदा होना मान भी लिया जाय तो हिन्दुस्तान के तालाबो में, जहाँ वे कुछ दिन रहते हैं, मोतियों का पैदा होना आज तक नही सुना गया। हाँ एक बार हमने कही पढा था कि पजाब या राजपूताने की किसी झील में कुछ शुक्तियां ऐसी मिली थी जिनमे मोती थे, पर क्या जितने हंस मानसरोवर छोड़ कर नीचे आते है वे सिर्फ उसी झील में जाकर रहते और मोती चुगते है? वहाँ भी यदि मोती बिखरे हुए पड़े हो, तभी उन्हे हंस-गण आसानी से चुगेगे। पर यदि वे शुक्तियो के भीतर ही रहते हो तो उनको फोड़कर मोती निकालना हंसो के लिए जरा कठिन काम होगा। पर इन संभावनाओ का कुछ अर्थ नही। निर्मल जल की उपमा मोती से दी जाती है और मानसरोवर का जल अत्यन्त निर्मल है। इससे उसके मोती सदृश निर्मल जल की उपमा मोती से देते-देते लोगो ने जल को ही मोती मान लिया हो तो कोई आश्चर्य नही। अतएव—"की हंसा मोती चुगै, की भूखे रह जाय" आदि मे मोती चुगने से मतलब मोती के समान निर्मल जल पीने से जान पड़ता है। यह पीने की बात हुई। अब खाने की बात का विचार कीजिए। नैषधचरित्र के पहले सर्ग में लिखा है कि राजा नल ने एक हंस पकड़ा। हंस आदमी की बोली बोलता था (उसने राजा से कहा—"फलेन मूलेन वारिभूरुहो मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः।" अर्थात् पानी। पैदा होने वाले पौधों और बेलों के फलो और कन्दो से मैं मुनियों के समान अपना जीवन-निर्वाह करता हूँ।) भामिनी-विलास में जगन्नाथ राय ने हंस की एक अन्योक्ति कही है, यथा—

भुक्ता मृणालपटली भवता निपीता-
न्यम्बूनि यत्रनलिनानि निषेवितानि।
रे राजहंस! वद तस्य सरोवरस्य
कृत्येन केन भवितासि कृतोपकार?

रे राजहंस, जिसके आश्रय में रह कर तूने मृणालदण्डों को खाया, जल-पान किया, और नलिनों का स्वाद लिया उस सरोवर का तू किस प्रकार प्रत्युपकार करेगा?

इन अवतरणो से प्रकट है कि हंस चाहे मोती चुगते और दूध पीते ही क्यों न हों; पर वे पानी भी पीते हैं और जलरुह पौधो के फल, फूल, मूल, नाल मृणाल विस-तन्तु भी खाते है। हंसों को जलपूर्ण जलाशयों मे रहना अधिक पसन्द है। वहीं उनके खाने की सामग्री, विशेष करके मृणालदंड, उनके भीतर के विस-तंतु और उनसे निकलने वाला रस है। कमल-नाल को तोड़ने से उसके भीतर से सफेद-सफेद सूत-सी एक चीज निकलती है, उसी को विस-तंतु कहते हैं। सुनते हैं उसे हंस बहुत खाते है। मृणाल-दंड को गाँठो से एक तरह का रस भी निकलता है, वह पतले दूध की तरह सफेद होता है। उसमें कुछ मीठापन भी होता है। उस रस का भी नाम क्षीर है। पेड़ों से निकलने वाले पानी के सदृश सफेद रंग के प्राय. सभी प्रवाही पदार्थों का नाम क्षीर है। यहाँ तक कि गूलर, बरगद, थूहड़, और मदार तक से निकलने वाली सफेद चीज को हम लोग दूध ही कहते हैं। मृणाल-दंड पानी मे रहते हैं। उन्हीं के भीतर से क्षीर-तुल्य सफेद रस निकलता है। उसी रस को हंस लोग पीते या खाते हैं। अतएव, इस तरह, पानी के भीतर से निकाल कर हंसों का दूध पीना जरूर सिद्ध है। अनुमान होता है कि आरम्भ में इसी प्रकार के नीर-क्षीर के पृथकत्व से

पण्डितों का मतलब रहा होगा। धीरे-धीरे लोग यह बात भूल गए। उनकी यह समझ हो गई कि मामूली जल-मिश्रित दूध से हंस जल को पृथक कर देते हैं और जल को छोड़ कर दूध भर पी जाते हैं।

## अभ्यास के लिये

१—क्या हंस में दूध और पानी अलग-अलग कर देने की शक्ति है?

२—सायनाचार्य ने हंस के नीर-क्षीर विवेक पर क्या कारण लिखा है?

३—इस विषय में पाश्चात्य विद्वानों ने जो खोज की, उससे क्या बात सिद्ध हुई?

४—हंस कहाँ रहते हैं और क्या खाते-पीते हैं?

५—'की हंसा मोती चुगै की भूखे रह जाय' का क्या अर्थ है? इस कथन पर अपनी सम्मति दीजिए।

६—प० महावीर प्रसाद द्विवेदी के विषय में आप क्या जानते हैं? इनकी साहित्यिक महत्ता और गद्य शैली की विशेषताओं पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

# १७—संस्कृत काव्यों में वर्षा वर्णन

[ लेखक—डा० रघुवंश ]

हिन्दी के वर्तमान लेखकों में डा० रघुवंश का प्रमुख स्थान है। आप हरदोई के निवासी हैं। आपके जीवन में प्रकृति की विचित्रता है; अर्थात् जन्म से लुंज होने पर भी आपने डी० लिट् की उपाधि प्राप्त की है। विकलाग होने पर भी आपने एक अभूतपूर्व उन्नति की है। आपकी उन्नति आदर्श है।

आप अधिक अध्ययनशील हैं। आपने हिन्दी, संस्कृत, और अंग्रेजी का विशेष रूप से अध्ययन किया है। आपके निबन्धों में आपकी मनन-शीलता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। आजकल आप प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रोफेसर हैं।

आप भावात्मक शैली के निबन्धकार हैं। आपकी शैली में तन्मय करने का गुण विशेष रूप से पाया जाता है। भाषा में सस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता रहती है।

भारतीय जीवन मे वर्षा और वसंत दोनो ऋतुओ का महत्त्व रहा है। कृषि के पकने के साथ वनस्पति जगत् में जो यौवन-उन्माद छा जाता है, उसे भारतीय जनता ने अपने आनन्दोल्लास के साथ एक रस कर दिया है। धरा का विस्तार खेतो के पकने से पीला होता जाता है, और उस पर उगने वाली वनस्पति सूखती जाती है उस समय हमारा वसंत पतझड़ के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु उसके आनन्द को ग्रीष्म की चपेटें समाप्त कर देती हैं, यह सब इतना जल्दी हो जाता है

कि पता नहीं चलता। संभव है भारत में हजारों वर्ष पूर्व अधिक स्थायी वसंत आता रहा हो। फिर भी प्रकृति का नवोल्लास वृक्षों की डाली-डाली पर झूम उठता है और हमारा जीवन उससे नवप्राण ग्रहण करता है। लेकिन वर्षा का आकर्षण ग्रीष्म की प्रचंड लू के बाद अधिक तीव्र हो जाता है। क्षितिज रेखा पर उठती हुई बादलों की प्रथम मालाओ को देखने के लिए प्राणी मात्र आकुल रहता है। उस कारण संस्कृत साहित्य मे वसंत के साथ वर्षा का समान महत्त्व रहा है। प्रत्येक कवि की प्रतिभा और कल्पना ने वर्षा की घुमड़ती-उमड़ती घटाओ से प्रेरणा प्राप्त की है। अस्तु।

## आदि कवि

सर्व प्रथम आदि कवि की उर्वर कल्पना में हम वर्षा के विस्तार को देखें। राम प्रस्रवण पर्वत पर सुग्रीव के राज्याभिषेक के बाद निवास करते हैं। किष्किंधा के निकटवर्ती इस पर्वत पर निवास करते कुछ समय बीता। सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए अभी प्रयास प्रारंभ नही किया है। उसी समय वर्षा आ जाती है। वाल्मीकि ने पात्रों के मुख से अधिकांश प्रकृति-वर्णनों को उपस्थित किया है। [यह वर्णन राम लक्ष्मण से करते हैं। ऐसा जान पड़ता है प्रकृति के उल्लास से वियोग-स्थिति में भी उनका मन आकर्षित हो उठा है, और उस सौंदर्य की ओर अपने सहचर अनुज लक्ष्मण को वे प्रेरित कर रहे हैं।] "यह वर्षा काल आ गया है। देखो पर्वत के निकट आकाश बादल से घिर गया है। सूर्य की किरणों से नव मास के गर्भ को धारण कर समुद्र के रस को पीकर आकाश ने वर्षा रूपी रसायन उत्पन्न किया है। मेघ की सोपान-पंक्तियों से आकाश में चढ़ कर कुटज और अर्जुन की मालाओं से दिवाकर को शोभित किया जा

सकता है। संध्या की लाल आभा पर छाते हुए बादलो से लगता है मानो सफेद बादलो की पट्टी आकाश के घाव पर बाँधी गई है। रक्त पीत आभा वाले बादलो से शोभित आकाश मंद पवन रूपी निश्वास छोड़ता हुआ और संध्या की लालिमा रूपी चन्दन लगाये हुये वियोगी पुरुष के समान जान पड़ता है।" प्रकृति के इस सौंदर्य्य और उल्लास के बीच मे सीता-वियोग की छिपी हुई वेदना इन वर्णनों मे यत्र-तत्र झलक उठती है—"यह घाम से सताई हुई सीता के समान शोक से दुःखी धरा, वर्षा के पहले जल से प्लावित होकर उच्छ्वास छोड़ रही है। बादलों के उदर से मुक्त, कपूर से शीतल और केतकी गंध वाले पवन को अंजलि मे भरकर पिया जा सकता है। फूले हुए अर्जुन से आच्छादित तथा केतकी के गंध से वासित यह पर्वत सुग्रीव के समान जल धाराओं से अभिषिक्त हो रहा है। मेघ रूपी कृष्ण मृगचर्म धारण किये हुए वर्षा की धाराओं का यज्ञोपवीत पहने हुए और पवन से गुम्फित कंदराओ वाला यह पर्वत आचार्य जैसा जान पड़ता है। बिजली रूपी सोने के कोड़े से पीटा जाता हुआ आकाश बादलों की गरज के रूप में संवेदना से चीत्कार करता है, और श्याम मेघों में चमकती हुई बिजली रावण की गोद में छटपटाती हुई सीता जान पड़ती है। हे लक्ष्मण ! पर्वत की चोटियों पर कहीं-कही वर्षा के आगमन से उत्सुक बादलो से आच्छादित फूले हुये कुटज के वृक्षो को देखो। ये सब मेरे वियोगी मन को उद्विग्न ही करते हैं। लू और धूप शांत हो गई है, राजाओ ने यात्रा स्थगित कर दी है और परदेशी अपने घर लौटे आ रहे है। चक्रवाक अपने जोड़े के साथ मानस की ओर चल दिए हैं। वर्षा के जल के प्लावित होने से यातायात बन्द हो गए है। आकाश कही प्रकाशित और कही काले मेघो से शोभित है। कहीं पर्वत से रुके हुए बादलों का समूह शांत समुद्र के समान जान पड़ता है।

"हे लक्ष्मण, पर्वत से निकलने वाली छोटी नदियों का पर्वत की धातुओं से ताम्रवर्ण हुआ जल सर्ज, कदम्ब के पुष्पों से मिलकर मयूरों के केका शब्द का अनुसरण करता हुआ तीव्र गति से प्रवाहित हो रहा है। वृक्षों में जामुन के फल लदे हैं और हवा चलने से अनेक रंग के आम जमीन पर गिरते हैं।

हिमालय की चोटियों के समान ये बादल बगुलों की पंक्तियों तथा बिजली की पताकाओ के साथ इस प्रकार गरज रहे हैं, मानों मत्त हाथी युद्ध में लगे हुये हैं। वर्षा के जल से धरा पर हरी दूब छाई हुई है और मोरों ने नाचने का उत्सव प्रारंभ कर दिया है। बिना बरसते हुए बादलों की छाया में दोपहर के समय वन और भी शोभित होते हैं। खूब जल से लदे हुए बादल गर्जन करते हैं और पर्वतों की ऊँची चोटियों पर विश्राम करके फिर आगे बढ़ जाते हैं। मेघों के बीच में उड़ती हुई बगुलों की आनन्दित पंक्ति ऐसी 'जान पड़ती है मानों आकाश ने कमल की माला धारण कर रखी है जो हवा से हिल रही है। नई घास से ढकी हुई हरी धरा पर इंद्र वधूटियाँ ऐसी जान पड़ती हैं, मानों किसी स्त्री की हरी साड़ी पर लाल बुंदियाँ पड़ी हों। कदम्बों की शाखाओं पर फूल लद गए, वनों में मयूर नृत्य करने लगे हैं। नदियाँ प्रवाहित हैं, मेघ गर्जन करते हैं, वियोगी चिंतित हैं, वनान्त शोभित है, मयूर नाचते हैं और वानर संतुष्ट हो गए हैं। वन के निर्झरों के कल-कल शब्द से आकुल हुए मत्त हाथी केतकी पुष्प की सुगंध को सूँघ कर आनंदित होकर मयूरों के साथ ही नाच रहे हैं। कदम्ब की शाखाओं पर उड़ते हुए भ्रमर वर्षा के जल से पुष्पों से अर्जित अपने पद को छोड़ रहे हैं। अधिक रस वाले जामुन के फलों को भौंरे छापे हुए

हैं। पेड़ की पंक्तियों से मुक्ता के समान गिरते हुए जल-बिंदुओं को पत्ती अपने पंखो को फुला कर प्रसन्न हो कर पी रहे हैं। षट्पदो के स्वर तंत्री का मधुर स्वर है, और बानरों की आवाज ताल है तथा मेघ मृदंग का नाद करते है। इस प्रकार वनो में संगीत हो रहा है। जल-वर्षा से गिरे हुए केसरो वाले कमलों से विदा लेकर भ्रमर केसर-युक्त कदम्ब पुष्पो का रस प्रसन्न होकर पी रहे हैं। समुद्र के समान गर्जन करते हुये मेघ आकाश का आश्रय लेकर अत्यधिक वर्षा से नदी, सरोवर, वापी तथा पृथ्वी को जलमय कर रहे है। हवा से प्रताड़ित होकर तेज वर्षा हो रही है। और जल से प्लावित होकर नदियाँ बहुत वेग से बह रही हैं, उनके कगार भी टूट गये हैं। आकाश ऐसा छाया रहता है कि न तो तारो के दर्शन होते है और न सूर्य दिखाई पड़ता है। वर्षा के जल से धुली हुई ऊँचे पर्वतों की चोटियाँ और भी सुन्दर लगती हैं। उन पर मुक्ता की लड़ियों की भाँति अपातो का समूह गिर रहा है।

## कालिदास का वर्षा-वर्णन

इस प्रकार आदि कवि वाल्मीकि के वर्षा-वर्णन मे सहज-चित्रमयता है। इनके बाद कालिदास ने वर्षा का वर्णन ऋतु संहार के दूसरे सर्ग मे किया है। यह वर्णन-कथा-प्रसंग से मुक्त है, इसमे ऋतु सम्बन्धी उल्लास तथा उद्दीपन की भावना प्रमुख है। परन्तु महाकवि की कल्पना ने प्रकृति के सजीव रूप को भी चित्रित किया है—जैसे सारा वर्णन कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को सम्बोधित करके कर रहा है—"देखो प्रिया, जल की धाराओ से भरे हुए बादलो के मतवाले हाथी पर चढ़कर बिजलियों की पताकाओं को फहराता हुआ, गर्जन के नगाड़े बजाता हुआ यह

पावस-राज आ पहुँचा है। कहीं नीले कमल की पंखुड़ी जैसे नीले और कहीं घुटे हुए आंजन की ढेरी के समान काले-काले मेघ आकाश में आते जा रहे हैं। और देखो, जिन बादलों से पपीहा पिउ-पिउ कहकर पानी की याचना करता है, वे पानी के भार से झुके हुए, अनेक धाराओं में बरसने वाले मेघ मन्द-मन्द गर्जना करते घिरते आ रहे हैं। मृदग के समान नाद करते, बिजली की डोरी वाला इंद्रधनुष चढ़ाए हुए ये मेघ अपने तीखी धार वाले पैने बाण बरसा कर परदेशियों के मन को व्यथा पहुँचा रहे हैं। वैदूर्य्यमणि के समान कोमल घास से भरी हुई, कदली के पत्तों से लदी हुई और वीर बधूटियों से छाई हुई धरा उस नायिका के समान जान पड़ती है, जिसने सफेद रत्नों को छोड़कर अन्य सभी रत्नों को धारण कर रखा है। देखो, आज सदा मधुर स्वर करने वाले, गरजते बादलों से उत्सुक हो उठने वाले, अपने खुले पंखों से सुन्दर लगते मोरों के झुंड मोरनियों को गले लगाते-चूमते नाच उठे हैं। और ये नदियाँ कुलटा स्त्रियों की भाँति मटमैले पानी की बाढ़ से किनारे के वृक्षों को उखाड़ती हुई वेग से समुद्र की ओर जा रही हैं। फिर यह हरिणियों से कुतरी हुई हरी घास वाले और नवीन पल्लवों से आच्छादित वृक्षों वाले विन्ध्याचल के जंगल किसका मन आकर्षित नहीं कर लेते। कमल के समान सुन्दर आँखों वाले भयभीत हिरणों से भरा हुआ वन बरबस अपनी ओर मन आकर्षित करता है। छोटे-छोटे कीड़े, धूल और घास को बहाता हुआ, साँप के समान टेढ़ा-मेढ़ा घूमता हुआ मटमैला बरसाती पानी ढाल पर बहा जा रहा है और बेचारे मेढक उसे साँप समझ कर भयभीत हो रहे हैं।

पत्ते और फूलों के झड़ जाने से भ्रमर कमल की मीठी गुंजार करते हुए छोड़कर चले जा रहे हैं। बादल की गरज

से बनैले हाथी मस्त हो गए हैं और उनके माथे से बहते हुये मद पर भौरे लिपट गये हैं, हाथियों के वे मस्तक नील कमल से जान पड़ते हैं। श्वेत कमल जैसे उजले बादल जिन पहाडी चट्टानों को चूमते जाते हैं और जिन पर मोर नाचते रहे हैं, उन चट्टानों पर बहने वाले झरनों को देखकर प्रेमी जन विह्वल हो जाते है। इस ऋतु का पवन; कदम्ब, सर्ज, अर्जुन तथा केतकी के जंगलों को कँपाता हुआ, उनके फूलो की सुगंध से बसा हुआ तथा चंद्रकिरण और बादलों मे शीतल होकर प्रवाहित होता है। वर्षा में नदियाँ बहती हैं, बादल बरसते हैं, मस्त हाथी चिग्घाड़ते हैं, वन हरे हो जाते हैं, मोर नाचते और बंदर चुप होकर कंदराओं में छिप जाते है। कमल-पत्ते जैसी श्यामल पानी के भार से झुकी तथा मंद पवन के सहारे धीरे चलने वाली घटाओं में इंद्र धनुष निकल कर व्याकुल कर रहा है। वन में खिले हुये कदम्ब के पुष्पो से लगता है, वर्षा के नये जल से वह मगन हो गया है। पवन मे हिलती वृक्षो की शाखाओं से जान पड़ता है, वह हाथ को भार देकर नाच रहा है और केतकी की सफेद कलियो से जान पड़ता है घन खिल-खिला कर हँस रहा है। वर्षा-काल मानो प्रेमी के समान जूही की कलियो तथा मालती और मौलश्री के फूलों की माला गूँथ रहा है और कदम्ब के फूलों का कर्णफूल बना रहा है। वर्षा के जल की फुहारों से ठंडा पवन फूल से झुके वृक्षो को नचा रहा है, केतकी के फूलो के पराग को चारों ओर बिखेर रहा है और परदेश गये प्रेमियो के मन को विवश कर रहा है।

## अन्य कवि और वर्षा

बाद के कवियों में अन्य वर्णनों के समान वर्षा ऋतु का वर्णन भी अधिक अलंकृत तथा रूढ़िवादी होता गया है। साथ

ही इन कवियों में वर्षा के सहज चित्रों का अभाव है। कुमार दास, प्रवरसेन को वर्षा-वर्णन का अवसर अपने महाकाव्यों में नहीं मिला है। बुद्धघोष का वर्षा-वर्णन विस्तृत और कलात्मक है। यह वर्णन ऋतुओं के उत्सव प्रसंग में सिद्धार्थ द्वारा किया गया है, और इसमें उद्दीपन की भावना अधिक प्रत्यक्ष है—"प्रथम वर्षा से धरा का घर्म-ज्वर शांत हो गया है। और मेघ अपनी गर्जना से आचार्य के सामने मयूरों को वनों में नृत्य सिखा रहे हैं। नीलमणि के समान मेघ प्रचण्ड समीर से धीरे-धीरे आकाश में फैल रहा है, मानों आकाश रूपी कृष्ण-सर्प अपनी पुरानी केंचुल को छोड़ रहा हो। नीले आकाश में श्याम वर्ण के बादल इस प्रकार फैल रहे हैं कि सुन्दरी ने उसे जल के विस्तार रूपी दर्पण में पृथ्वी के प्रतिबिम्ब के समान देखा। हे प्रिये, आकाश में नवीन मेघों की माला इस प्रकार शोभित है, मानों पावस ऋतु में चिर प्रवासी प्रिय ने नवीन समागम के लिए दिशा की केश-वेणी को खोल दिया है। और क्षितिज से उठते हुये मेघ पर्वताकार ऐसे जान पड़ते हैं, मानों पहले इंद्र द्वारा जिनके पक्ष काट लिये गये थे, वे पर्वत ही समुद्र से नव बादलों के रूप में उठ रहे हैं। नभ के विस्तार में मेघ बिजली के साथ, हे मृगाक्षि, ऐसा जान पड़ता है, मानों पयोनिधि के सूख जाने पर उसके कीचड़ के गोले पर प्रवाल की लता लगी हुई है। और देखो, वन के रंग-मंच पर मयूरों के अद्भुत नृत्य को बिजली के नेत्रों से देखकर बादल अपनी मधुर गर्जना से प्रशंसा-सी कर रहा है। मयूर सर्प-समूह को लेकर अपने गंभीर केका शब्द से अम्बर को मुखरित कर रहा है और अपनी सुनहली पूँछ को उठाकर आनन्दित हो रहा है। काले-काले घिरे हुये बादलों के बीच में बिजली ऐसी चमक जाती है, मानों स्वर्णकार ने कसौटी पर एक सोने की रेखा खींच दी है। और

यह बिजली चमक कर विरागिणी नायिकाओ की भर्त्सना करती है। इद्र धनुष पर बिजली की प्रत्यंचा चढ़ा कर पयोद काल ने वर्षा के शरो से पृथ्वी को बिना श्वेत कमलो का कर दिया है। हरी घास पर रत्न-खंड के समान बीर वधूटियाँ फैली हुई हैं। और नवांकुरित भूमि पर ये ऐसी जान पड़ती है मानो संध्या के आकाश मे अरुण तारें निकल आये हो। बादलो के बीच में बगुलो का समूह ऐसा जान पड़ता है मानो पयोद-काल ने काम-देव की घोषणा के लिये शख उठाया है। और ये जो ओले पड़ते है, यह बादलो रूपी दिग्गजो के गण्डस्थल के घर्षण से तारको का समूह हो पृथ्वी पर जैसे गिर रहा है। जैसे-जैसे इस आकाश मे बिजली की अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, वैसे ही पथिकों की सुन्दरियो का विरह तीव्र होता है। निदाघ से संतप्त वन-स्थली पयोद से जीवन पाकर मयूर के केका स्वर के मिस हर्ष प्रकट कर रही है।"

भारवि के किरातार्जुनीय मे वर्षा का संक्षिप्त वर्णन अन्य ऋतुओं के साथ हुआ है। अर्जुन की तपस्या भंग करने आई हुई अप्सराओ को ऋतु अपने विलास से सहायता देती है। इस प्रकार यह वर्षा वर्णन अपने प्रसंग के अनुसार उद्दीपक है, कलात्मक भी—"जल से भारी बिजली की चमक से प्रकाशित और गम्भीर स्वर मे गरजन करते हुये स्त्रियो के मान को दूर करने वाले मेघ आकाश मे चारो ओर फैल गये। वहाँ मालती के पुष्प पुष्पित हो गये। और तेज वर्षा की बूंदों के गिरने से पृथ्वी पर कमलो का नाश हो गया। सभी दिशाओं मे पवन ने पुष्पो की सुगंध फैला दी, जिससे सभी का मन आनंदित हो गया। पके हुये जामुन के फल के रस से कोकिला पुष्ट हो गई है और अपने नवीन कंठ-स्वर से

वह दुःखी मन को भी आकर्षित कर रही है। कदम्ब की गन्ध से मस्त पवन और मयूर के केका स्वर से किस धैर्य्यवान का मन चचल नही हो जाता।" इसी प्रकार माघ ने रैवतक पर्वत पर कृष्ण की विलास-क्रीड़ा के प्रसङ्ग में सभी ऋतुओं के साथ वर्षा का वर्णन किया है। इस वर्णन मे उद्दीपन और विलास को भावना अधिक व्यापक है—"इसके अनंतर मेघमाला चंचल विजली रूपी नेत्रो को नचाती हुई अपने निर्दिष्ट समय के पूर्व अपने प्रियतम के समान रैवतक पर्वत के निकट आई। मेघ-माला मण्डलाकार इन्द्रधनुष को धारण किए हुए श्री कृष्ण के कर्ण-कुडलो की शोभा की अनुहार लग रही थी। आकाश रूपी नवीन तमाल के वृक्ष की बादल रूपी शाखाएँ तेज हवा से हिल रही थी और उनमे मजरी के समान विजली कभी दिखाई देती ओर कभो छिप जाती थी। विरहिणी ने मेघ की ओर कोप दृष्टि से देखा। पुष्पित कदली के फूलो को कंपित करने वाला सौरभ-युक्त वर्षा का पवन प्रवासियों को दुःख देता हुआ और मानिनो रमणियों का मान भंग करता हुआ वनो को झकझोरने लगा। नगाड़े के समान मेघ-गर्जन सुन कर मोर नाचने लगे। वन का पवन कदम्ब के पुष्पो की रेणु से आकाश लाल रंग का करने लगा। तथा धरा कदली के फूलो से सुगन्धित होकर पुष्पो के मन में नया अनुराग भरने लगा। मेघों की प्रथम हलकी वृष्टि से ग्रीष्म का ताप निवृत्त हो गया और भूतल की धूल दूर हो गई। वने मेघो के आघात से, आकाश से गिरे हुये क्षीण ज्योति चन्द्र खड के समान केतकी चारों ओर पुष्पित हुई। ये पुष्प हाथी के दांत के समान शुभ्र वर्ण के और चद्रमा के मृग-चिह्न के समान भौंरो से शोभित थे। मोतियों के चूर्ण सी स्वेत, झरनों के उज्ज्वल जल-कणो के समान मनोहर कुंज के फूलों की रेणु वही जैसी फैला था। नवीन जल की बूंदों के समान कोमल मालती के फूलों

के निरंतर संसर्ग से उनके पराग से सफेद भौंरे चलते हुये नक्षत्र के समान जान पड़ते थे।

इस प्रकार संस्कृत काव्य की परम्परा के साथ वर्षा वर्णन का रूप अधिक विचित्र-प्रधान तथा रूढ़िवादी होता गया है। आदि कवि और कालिदास की दृष्टि के सम्मुख प्रकृति का सहज रूप और अकृत्रिम उल्लास था। बुद्धघोष ने इसको कलात्मक शैली में बहुत कुछ अपनाया है, यद्यपि उनमे ऐसा सहज वातावरण नहीं है। वाल्मीकि मे वर्णन की शैली क्रिया-व्यापारो की संश्लिष्टता के आधार पर अधिकतर चलती है, जब कि कालिदास कल्पना और सौंदर्य व्यञ्जना का आश्रय लेकर चलते है। बुद्धघोष ने कालिदास की शैली अपनाई है। भारवि मे अलङ्कार के आग्रह के साथ उद्दीपन की प्रवृत्ति है, जिसका पूर्ण विकास माघ मे मिलता है। माघ की शैली मे ऊहात्मक वैचित्र्य की प्रधानता है और वर्णन की दृष्टि से उनमें प्रकृति से अधिक मानवीय विलास का प्रसार पाया जाता है।

## अभ्यास के लिये

१—आदि कवि कौन थे? उनके सम्बन्ध मे तुम क्या जानते हो?

२—कालिदास के वर्षा-वर्णन का चित्रण अपने शब्दो में करो।

३—इस पाठ के आधार पर वर्षा पर एक निबन्ध लिखो, जिसमें साहित्यिकता की पुट हो।

४—वर्षा काल में किसी पर्वतीय देश की यात्रा करो और उसकी छटा का चित्रण अपने शब्दों मे करो।

५—भावार्थ स्पष्ट करो :—

मेघ रूपी कृष्ण........सीता जान पड़ती है।

---

# १८—लोकनायक तुलसीदास

[ लेखक—पडित हजारीप्रसाद द्विवेदी ]

पडित हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म-स्थान बलिया जिले का एक ग्राम है। आपने सर्वप्रथम सस्कृत विशेषतः ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया। तत्पश्चात् आपने बङ्गला तथा अग्रेजी में भी प्रवेश करके सफल कलाकार होने का परिचय दिया है। कुछ दिनों तक आप विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्ति-निकेतन बोलपुर मे अध्यापन-कार्य करते रहे। आजकल आप काशी विश्वविद्यालय मे हिदी विभाग के अध्यक्ष हैं।

द्विवेदी जी हिन्दी, अग्रेजी, सस्कृत, बङ्गला प्रभृति भाषाओ के विद्वान एव भक्ति-कालीन साहित्य के मर्मज्ञ हैं। आपने तुलसी, सूर, कबीर, विद्यापति, चडीदास, प्रभृति हिन्दी तथा बङ्गला भक्त-कवियो का गवेषणापूर्ण अध्ययन किया है। हिन्दी समालोचको में आपका स्थान अत्यन्त गौरव का है। आपकी आलोचनाये मौलिक, ठोस और व्यक्तित्व की छाप रखने वाली हैं।

आपने सूर-साहित्य, हिन्दी साहित्य की भूमिका, सन्त कबीर, बाण की आत्मकथा—प्रभृति उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रन्थो की रचना की है। आपके ओजपूर्ण लेख 'विशाल भारत' तथा अन्य मासिक पत्रों मे प्रकाशित होते रहते हैं। आपकी भाषा शुद्ध हिन्दी होती है; जिसमें प्राजलता, भावप्रवणता, सुबोधता आदि मुख्य गुण हैं। आपने प्रायः सस्कृत के तत्सम किन्तु प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग किया है। आपकी भाषा पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की काव्यमयी शैली का भी प्रभाव यत्र-तत्र परिलक्षित होता है। बङ्गला के प्रभाव से आपकी शैली में कोमल कान्त पदावली का भी समावेश हो गया है।

प्रस्तुत लेख आपकी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' से उद्धृत किया गया है।

डाक्टर ग्रियर्सन ने कहा है कि बुद्धदेव के बाद भारत में सबसे बड़े लोकनायक तुलसीदास थे। ये असाधारण प्रतिभा लेकर उत्पन्न हुये थे। जिस युग में इनका जन्म हुआ था, उस युग के समाज के सामने कोई ऊँचा आदर्श नही था। समाज के उच्च स्तर के लोग विलासिता के पंक में उसी तरह मग्न थे, जिस प्रकार उन्हें कुछ वर्ष पूर्व सूरदास ने देखा था। निचले स्तर के पुरुष और स्त्री दरिद्र, अशिक्षित और रोग-ग्रस्त थे। वैरागी हो जाना मामूली बात थी। जिसके घर की सम्पत्ति नष्ट हो गई, या स्त्री मर गई, संसार में कोई आकर्षण नहीं रहा वह चट संन्यासी हो गया। सारा देश नाना सम्प्रदाय के साधुओं से भर गया था। 'अलख' की आवाज गर्म थी, हालाँकि ये 'अलख के लखने वाले' कुछ भी नही लख सकते थे। नीच समझी जाने वाली जातियों में कई पहुँचे हुए महात्मा हो गए थे, उनमें आत्म-विश्वास का संचार हो गया था, जैसा कि साधारणतः हुआ करता है और शिक्षा और संस्कृति के अभाव में यही आत्म-विश्वास दुर्वह गर्व का रूप धारण कर गया था। आध्यात्मिक साधना से दूर पड़े हुए ये गर्वस्फीत पंडितों और ब्राह्मणों की बराबरी का दावा कर रहे थे। परम्परा से सुविधा-भोग करने की आदी ऊँची जातियाँ इससे चिढ़ा करती थीं। समाज में धन की मर्यादा बढ़ रही थी। दरिद्रता हीनता का लक्षण समझी जाती थी। पंडितों और ज्ञानियों का समाज के साथ कोई भी सम्पर्क नही था। सारा देश विशृङ्खल, परस्पर विच्छिन्न, आदर्श-हीन और बिना लक्ष्य का हो रहा था। एक ऐसे आदमी की आवश्यकता थी जो इन परस्पर विच्छिन्न और दूर विभ्रष्ट

टुकड़ों में योग-सूत्र स्थापित करे। तुलसीदास का आविर्भाव ऐसे समय में ही हुआ।

भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय समाज में नाना भाँति की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार-निष्ठा और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे, गीता में समन्वय की चेष्टा है, और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे। वे स्वयं नाना प्रकार के सामाजिक स्तरों में रह चुके थे। ब्राह्मण वंश में उनका जन्म था, दरिद्र होने के कारण उन्हें दर-दर भटकना पड़ा था, गृहस्थ-जीवन की सबसे निकृष्ट आसक्ति के वे शिकार हो चुके थे, अशिक्षित और संस्कृति-विहीन जनता में वह रह चुके थे; और काशी के दिग्गज पण्डितों तथा संन्यासियों के संसर्ग में उन्हें खूब आना पड़ा था। नाना पुराण-निगमागम का अभ्यास उन्होंने किया था और लोकप्रिय साहित्य और साधना की नाड़ी उन्होंने पहचानी थी। पण्डितों ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि उस युग में प्रचलित ऐसी कोई काव्य-पद्धति नहीं थी, जिस पर उन्होंने अपनी छाप न लगा दी हो। चन्द के छप्पय, कबीर के दोहे, सूरदास के पद, जायसी की दोहा-चौपाइयाँ रीतिकारों के सवैया-कवित्त, रहीम के बरवै, गाँववालों के सोहर आदि जितनी प्रकार की छन्द-पद्धति उन दिनों लोक में प्रसिद्ध थी, सबको उन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभा के बल पर अपने रंग में रँग दिया।

लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट् चेष्टा है। 'लोक और शास्त्र का समन्वय', गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय भाषा और संस्कृति का समन्वय,

निर्गुण और सगुण का समन्वय, कथा और तत्त्वज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय—'रामचरितमानस' शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है। इस महान् समन्वय के प्रयत्न का आधार उन्होने रामचरित को चुना। वस्तुतः इससे सुन्दर चुनाव ही नही हो सकता। कुछ पश्चिमी समालोचको ने कहा है कि कविता अच्छी करना चाहते हो तो विषय अच्छा चुनो। राम-नाम का प्रचार उन दिनों बड़े जोरो पर था। निर्गुण भाव से भजन करनेवाले भक्तो ने इसी नाम को अपनाया था। लोक मे इस शब्द की महिमा प्रतिष्ठित हो चुकी थी। तुलसीदास के लिये काम इतना ही बाकी था, कि लोकगृहीत इस नाम को मर्यादा-पुरुष के चरित्र से संबद्ध कर दिया जाय। कृष्ण-भक्ति खूब प्रचलित थी, पर तुलसीदास मन ही मन मधुर भाव की उपासना पर झुँझलाये हुए थे। वे इसके विरुद्ध तो कुछ कह नही सकते थे, क्योकि यह 'हरि-भक्ति-पथ' था और उनके उद्भावित पथ से कम 'श्रुतिसम्मत' न था, पर उन्होंने भक्ति का प्रसग आते ही दास्यभाव की भक्ति को श्रेष्ठ कह कर अप्रत्यक्ष रूप मे मधुर भाव का प्रत्याख्यान कर दिया। निर्गुणियों पर भी वे उसी तरह झुँझलाये हुये थे, पर वह पथ भी 'श्रुतिसम्मत' था, इसीलिये इसके विरुद्ध बोलने मे भी उनका मुँह बन्द था, और इसीलिये वे उसे मान कर भी नहीं मानना चाहते थे। कथा मे प्रसंग आते ही वे राम के सगुण रूप पर जोर देते थे। कहीं किसी भक्त से भगवान् की भेंट हो गई तो चट उसने वर-दान से माँगा 'हे राम, तुम्हारा सगुण रूप ही मेरे मन में बसे, निर्गुण नहीं।' इसी तरह उच्च वर्ण के होने के कारण स्वभावतः ही उस युग के तथाकथित' 'वर्णधर्मो' की बढ़-बढ़ कर की हुई बातें उन्हे बुरी लगती थी, पर कथा-प्रसंग में सर्वत्र उनकी

महिमा गाई है हाँ, अवश्य ही इस बात के लिए उनमे भक्ति का होना आवश्यक माना गया है। इस समस्या का उन्होने यही समन्वय किया है कि अगर छोटी जाति का आदमी भक्त हो, तो वह मुहूर्त भर मे ऊँची जाति के भक्तो से ऊपर उठ जाता है, 'भरत-सम भाई' हो जाता है। उनके राम अधम-उधारन है, जो हठपूर्वक अधमों का उद्धार करते है। यह ध्यान देने की बात है कि तुलसीदास ने रूप की अपेक्षा नाम को श्रेष्ठ बताया है, यहाॅ तक कि 'ब्रह्म राम ते नाम बड़ा' है। अर्थात् निर्गुण भाव मे भजन किया हो, या सगुण भाव से, नाम की महिमा मे कोई सन्देह नही। इस सिद्धान्त के द्वारा उन्होने सहज ही अपने विरुद्धवादियो को भी अपनी श्रेणी मे ले लिया है।

समन्वय का मतलब है कुछ झुकना, और कुछ दूसरो को झुकने के लिये बाध्य करना। तुलसीदास को ऐसा करना पड़ा है। यह करने के लिये जिस असामान्य दक्षता की जरूरत थी वह उनमे थी। फिर भी झुकना झुकना ही है। यही कारण है कि 'रामचरितमानस' के कथा-काव्य की दृष्टि से अनुपमेय होने पर भी उसके प्रवाह मे बाधा पड़ी है। अगर वह विशुद्ध कविता की दृष्टि से लिखा जाता, तो कुछ और ही हुआ होता। यहाँ दार्शनिक मत की विवेचना है, तो वहाॅ भक्ति-तत्व की व्याख्या फिर भी अपनी असामान्य दक्षता के कारण तुलसीदास ने इस बाधा को यथा-संभव कम किया है। अपने प्रयत्न में वे इतने अधिक सफल हुये है कि भावुक समालोचक को उसमे कोई दोष ही नही दिखाई देता। कथा का झुकाव इतनी मार्मिकता के साथ पहचाना है कि यह बात आदमी प्राय भूल जाता है कि 'रामचरितमानस' का लक्ष्य केवल कथा ही नही, और कुछ भी है। शुष्क तत्वज्ञान तुलसीदास को कभी प्रिय नही हुआ।

जब कभी उसकी चर्चा वे करते हैं तो कवि की भाषा में। उपमाओं और रूपकों के प्रयोग से विषय अत्यन्त साफ हो जाता है, और जहाँ कविता करने के लिए तुलसीदास कवि की भाषा का प्रयोग करते है, वहाँ वे अद्वितीय नजर आते है।

चरित्र-चित्रण मे तुलसीदास अतुलनीय हैं। उनके सभी पात्र हाड़-मांस के बने हमारे ही जैसे जीव हैं। उनमें जो अलौकिकता है वह भी मधुर और समझ मे आने लायक है। उनके पात्रो के प्रत्येक आचरण मे कोई न कोई विशेष लक्ष्य होता है। मानव-जीवन के किसी न किसी अंग पर उनसे प्रकाश पड़ता है, या किसी न किसी सामाजिक वा वैयक्तिक कुरीति की तीव्र आलोचना व्यक्त होती है, या मानव-मानव में सद्भावना की पुष्टि की ओर इशारा रहता है। लीला के लिए लीला-गान उन्होंने कहीं नहीं किया। वे आदर्शवादी थे, और अपने काव्य से भावी समाज की सृष्टि कर रहे थे। वे उस देश मे पैदा हुए थे जहाँ कल्पना की जा सकती है कि राम के जन्म के साठ हजार वर्ष पहले रामायण-काव्य लिखा गया (ब्रह्मवैवर्त पुराण मे), अर्थात् जहाँ कवि भविष्य का द्रष्टा और स्रष्टा समझा जाता है। तुलसीदास ऐसे ही भविष्य-स्रष्टा थे। आज तीन सौ वर्ष बाद इस विषय मे कोई संदेह नहीं रह सकता कि उन्होंने भावी समाज की सृष्टि सचमुच की थी। आज का उत्तर भारत तुलसीदास का रचा हुआ है। वही इसके मेरु-दंड है।

भाषा की दृष्टि से भी तुलसीदास की तुलना हिन्दी के किसी अन्य कवि से नहीं हो सकती। जैसा कि पहले ही बताया गया है, उनकी भाषा मे भी एक समन्वय की चेष्टा है। तुलसीदास की भाषा जितनी ही लौकिक है, उतनी ही शास्त्रीय। उसमें

संस्कृत का मिश्रण बड़ी चतुरता के साथ किया गया है। जहाँ जैसा विषय होता है, भाषा अपने आप उसके अनुकूल हो जाती है। तुलसीदास के पहले किसी ने इतनी मार्जित भाषा का उपयोग नही किया था। काव्योपयोगी भाषा लिखने में तो तुलसीदास कमाल करते हैं। उनकी 'विनय-पत्रिका' मे भाषा का जैसा जोरदार प्रवाह है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जहाँ भाषा साधारण और लौकिक होती है, वहाँ तुलसीदास की उक्तियाँ तीर की तरह सीधे चुभ जाती हैं, और जहाँ शास्त्रीय और गंभीर होती है, वहाँ पाठक का मन चील की तरह मँडरा कर प्रतिपाद्य सिद्धांत को ग्रहण कर उड़ जाता है।

मानव-प्रकृति का ज्ञान तुलसीदास से अधिक उस युग में किसी को नहीं था। पर यह एक आश्चर्य की बात है कि उन्होंने विश्व-प्रकृति को अपने काव्य में कोई स्थान नहीं दिया। इसमें संदेह नहीं कि जहाँ कही उन्होने थोड़ी-सी चर्चा की है, वहाँ उसमें कमाल किया है, पर असल में वे इससे उदासीन रहे। जो भावुक सहृदय पद-पद पर फूल-पत्तिया को देख कर मुग्ध हो जाता है, नदी-पहाड़ को देख कर तन-मन बिसार देता है, वह तुलसीदास के काव्य का लक्ष्यभूत श्रोता नही है। तुलसीदास प्रकृत्या भावुकता को पसन्द नहीं करते थे। एक ही जगह उनकी भावुकता 'पुलक-गात' और 'लोचन-सजल' के रूप में प्रकट होती है और वह भगवान् के 'करुणायतन' या 'मर्दन मयन' रूप को देख कर। इससे भी अजीब बात यह है कि उनकी उपमाओं, रूपकों, और उत्प्रेक्षाओं मे कही कहीं काव्यगत रूढ़ियों का बुरी तरह पालन किया गया है। उनके जैसे प्रतिभाशाली कवि के लिए जो इच्छा करते ही नई-नई उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का ढेर लगा सकता था, जो इस गुण में अतुलनीय था, यह बात एक अजीब सी लगती है। शायद इस

बातों का भी समाधान उसकी समन्वयात्मिका प्रतिभा के द्वारा ही किया जा सकता है, जो नवीनता के साथ-साथ प्राचीनता का सामञ्जस्य-विधान करती थी।

तुलसीदास कवि थे, भक्त थे, पंडित-सुधारक थे, लोकनायक थे, और भविष्य के स्रष्टा थे। इन रूपों में उनका कोई भी रूप किसी से घटकर नहीं था। यही कारण था कि उन्होंने सब ओर से समता (Balance) की रक्षा करते हुए एक अद्वितीय काव्य की सृष्टि की, जो अब तक उत्तर भारत का मार्ग-दर्शक रहा है, और उस दिन भी रहेगा जिस दिन नवीन भारत का जन्म हो गया होगा।

## अभ्यास के लिये

१—तुलसीदास के जन्म के समय हिन्दू समाज की कैसी अवस्था थी?

२—समन्वय से आप क्या समझते हैं? भारत का लोकनायक वही क्यों हो सकता है, जिसमें समन्वय करने की क्षमता हो?

३—तुलसीदास जी ने अपनी प्रतिभा से किस-किस क्षेत्र में कैसा समन्वय उपस्थित किया?

४—तुलसी के चरित्र-चित्रण एवं भाषा की मुख्य विशेषतायें बतलाइए।

५—तुलसीदास हमारे समक्ष किन किन रूपों में दिखलाई पड़ते हैं?

६—पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना एवं भाषा-शैली पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

परिशिष्ट

# टिप्पणी

## १—प्रतिदिन की प्रार्थना

प्रार्थना का जीवन मे अधिक महत्व है। प्रस्तुत पाठ मे प्रार्थना के लक्ष्य—सत्य का स्वरूप चित्रित किया गया है। सत्य क्या है, शिव क्या है, प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिये—आचार्य विनोवा भावे ने इस पाठ मे इसी की विवेचना की है।

**परमार्थ**—मोक्ष। **मुमुक्षु**—मोक्ष पाने की इच्छा वाला। **समन्वय**—मेल। **दैववाद**—वह सिद्धात, जो ईश्वर के भरोसे पर रहने की शिक्षा देता है। **निरहंकार**—अभिमान-शून्य। **पराक्रम**—पौरुष, धीरता। **सात्विक कर्त्ता**—कार्य का वह करने वाला, जिसमे सतोगुण की प्रचुरता हो।

## २—चारु चरित्र

इस लेख मे भट्ट जी ने चरित्र की महत्ता पर प्रकाश डाला है। उनकी सम्मति मे सच्चरित्र होना नितात आवश्यक है। सच्चरित्र मनुष्य का सर्वत्र सम्मान होता है। वह निर्धन होने पर भी चरित्र-हीन श्रीमान से कही अधिक आदरणीय है।

**नवी**—ईश्वर का दूत। **अंबिया**—नबी का बहुवचन। **औलिया**—सिद्ध। **गुरोर्गुरुः**—गुरु का भी गुरु। **अभिजात्य**—कुलीनता। **उत्कोच**—घूस। **अनुष्ठान**—आचरण। **सूत्र**—मूल मंत्र, माप।

अपिच—और। अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्तस्तु—हीन व्यक्ति तो केवल क्षीण ही है, परन्तु चरित्रहीन तो मृत है। जीवन्मुक्त—परम ज्ञानी। प्रवणचित्त—दत्तचित

## ३—वर्ष का नया दिन

प्रस्तुत पाठ में समय की अनतता पर प्रकाश डाला गया है, और यह दिखाया गया है, कि हम इसके खंड क्यों करते हैं।

कुंठित—जिसकी धार मंद हो गई हो। विच्छेद—पृथकता, अलगाव। परमाणु—बहुत ही छोटा अणु। विच्छिन्न—विभक्त। दुर्निवार—जिसका निवारण करना कठिन हो। प्रतिपदा—परिवा। खंडीकरण—खंड करना। अपरिमित—असीमित।

## ४—भुवनेश्वर के मंदिर

भुवनेश्वर के प्राचीन मदिरो का संबध भारत की प्राचीन सभ्यता और सस्कृति से है। प्रस्तुत पाठ में लेखक ने भुवनेश्वर के प्राचीन मंदिरों का वर्णन करके भारत को प्राचीन सभ्यता पर प्रकाश डालने का प्रशसनीय प्रयत्न किया है।

पुनरुद्धार—फिर से मरम्मत करना। विद्यमान—मौजूद। उल्लेखनीय—चर्चा करने के योग्य। प्रचुर—अधिक। जीर्णोद्धार—किसी पुरानी अथवा टूटी हुई वस्तु का नव-निर्माण। सुसज्जित—सजी हुई। निर्मूल—बे जड़। अश्लील—गन्दी। भीमकाय—भयानक अथवा विशाल शरीर धारी।

## ५—सज्जनता का दंड

प्रेमचन्द जी आदर्शवादी लेखक थे। इस कहानी में उनके इसी तथ्य का परिस्फुटन हुआ है। चरित्र के विकास के लिये इसमें पर्याप्त साधन हैं।

सर्वथा—सदैव। मितव्ययी—कम खर्च करने वाला किफायत शार। छात्रवृत्ति—वजीफा। व्यावसायिक—व्यापार सम्बन्धी अतिकूल—उल्टा। प्राबल्य—प्रबलता। धर्मनिष्ठा—धर्म में विश्वास मुखारविन्द—कमल रूपी मुख।

## ६—शिक्षा

इस लेख में माननीय संपूर्णानद जी ने नागरिकता की दृष्टि से शिक्ष की आवश्यकता एव उसकी उपयुक्तता पर सुन्दर प्रकाश डाला है।

सम्यक्—पूर्ण रीति से, भली प्रकार। दायित्व—जिम्मेदारी स्पर्धा—होड़। बहुज्ञ—अनेक विषयों का ज्ञाता। आत्मसाक्षात्कार—अपने आपको समझना। लांछन—दोष, कलक। ब्रह्मवेत्ता—ब्रह्मज्ञानी। लोक संग्रह-रत—लोक कल्याण में लगे हुए। परार्थ—परोपकार। नानात्वकी—अनेक प्रकार की। पार्थक्य—भिन्न-भिन्न।

## ७—हमारा सनातन पंचायत राज्य

पचायत राज्य भारत की प्राचीन शासन प्रणाली है। प्रस्तुत पाठ में लेखक ने वैदिक काल से लेकर हिन्दू काल तक के पचायत राज्य पर सूक्ष्मतः प्रकाश डाला है। और उसके उन्नतिशील आदर्शों का दिग्दर्शन कराया है।

जनपदों—बस्तियों, जिला। प्रतिपादन—बोधन, सम्पादन। विद्वेष—बैर। प्रवृत्ति—मन की लगन। परिणत—बदला हुआ। अन्यथा—विपरीत; असत्य, नहीं तो।

## ८—बीज की बात

श्री राय कृष्णदास के 'सुधांशु' से उद्धृत 'बीज की बात' आत्मकथा के रूप में गद्य काव्य है। इसमें बीज के उन प्रयत्नों का चित्रण है, जो उसने कृषकों से बदला लेने की भावना से प्रेरित होकर किये हैं। लेखक

हमें यह शिक्षा देता है, कि यदि मनुष्य साहसी, उद्यमी, बुद्धिमान और पराक्रमी है, तो वह बड़े से बड़ा काम कर सकता है।

स्वयंरुह—वनस्पति वंश। जकात—राज कर। भूमिपाल—जमींदार। प्रतिहिंसा—बदला। कृतांत—यम। बड़वा—घोड़ी। खल्वाट—तृण रहित। कुंतल—बाल। पयोदान—दूध या पानी का दान। प्रतिक्रिया—रोकने का उपाय। कासनी—हल्का बादामी। एकोहंबहुस्याम:—एक में बहुत बन जाऊँ। षडेते... .आदि श्लोक का अनुवाद—जहाँ उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति, और पराक्रम ये छः गुण हैं, वहाँ देवता भी सहायता करते हैं।

## ९—झंडा

यह एक ऐतिहासिक कहानी है। देश पर मर मिटने की भावना क इसमें अच्छा विकास हुआ है। देश भक्ति और वीरता के लिए इसमे उत्तेजक उपकरण भी हैं।

दुर्गम—कठिन। नैसर्गिक—प्राकृतिक। जरा—बुढ़ापा। उल्लास—हर्ष, प्रसन्नता। आक्रांत—घिरा हुआ। पंक्तिबद्ध—कतार बाँधकर। संपुटित—अंजलीबद्ध। सन्नद्ध—उद्यत। मरुधराधीश—मारवाड़ाधिपति। अपेक्षा—मुकाबिले। देदीप्यमान—प्रकाशमान कलेवर—शरीर, आकार।

## १०—दीपावली तथा मिट्टी की मूर्तियाँ

प्रस्तुत लेख में लेखक ने मिट्टी की मूर्तियो का इतिहास सामने उप स्थित किया है। मिट्टी की मूर्तियाँ हमारे देश मे चिर प्राचीन काल मे बनती चली आ रही हैं। ये केवल खेल की ही वस्तु नहीं है, देश की सभ्यता और संस्कृति की प्रतीक भी हैं।

सदृश—समान। पृथक् पृथक्—अलग अलग। चरमसीमा—अंतिम सीमा, चोटी पर। मृण्मूर्तियाँ—मिट्टी की मूर्तियाँ। प्रस्तर—पत्थर। निमित—लिए। द्योतक—बतलाने कला।

## ११—मेरी चोरी

यह एक कथात्मक जीवन-घटना-चित्र है, किन्तु कुशल लेखक ने इसमे विभिन्न आदर्शो और सिद्धान्तो पर भी प्रकाश डाला है। स्थान स्थान पर इसमे ऐसी नपी-तुली बाते कही गई हैं, जो जीवन के विकास के लिए परमावश्यक हैं।

वित्त—धन। उद्रेक—बढ़ती, अधिकता। गौरवान्वित—गौरव से सयुक्त। अलकापुरी—कुबेरपुरी। दूरदर्शिता—बुद्धिमानी। उपेक्षणीय—उपेक्षा करने के योग्य। वांछनीय—आवश्यक। विलोड़ित—मथित, हलकोरा हुआ। प्रक्षालिनी—धो देने वाली। पुण्यतोया—पवित्र जल वाली। सलिल—पानी। सौजन्य—सुजनता। आवाहन—बुलाना। वक्रतुंड—गणेश जी। वर्ज्य—जिसके लिए रोक हो। वारिधि—समुद्र। प्रकृतिस्थ—सावधान, स्वरूप। विडंबना—उपहास, व्यग्य।

## १२—आत्मसंस्कार और संगति

शुक्ल जी का यह एक विचारात्मक निबन्ध है। आत्म-संस्कार के लिए युवा पुरुषो को क्या करना चाहिये, और किस प्रकार की सगति मे रहना चाहिये, इन बातो का इसमे बडे विस्तार से वर्णन किया गया है।

आत्मसंस्कार—आत्मसुधार। वाजिदअली—अवध का अन्तिम नवाब, जो अत्यन्त विलासी था। बेकन—महारानी एलिजबेथ का समकालीन एक दार्शनिक राजनीतिज्ञ। सात्विकता—भले काम की ओर ले जाने वाली सद्प्रवृति। मकदूनिया और डेमेट्रियस—

र्शिन/ यूनान का एक प्रान्त विशेष, जहाँ सम्राट् सिकन्दर राज्य करता था।

## १३—लोकमान्य के चरणों में

लोकमान्य तिलक हमारे देश के एक महापुरुष थे। राष्ट्रीय यज्ञ में उन्होंने जीवन पर्यन्त आहुतियाँ प्रदान की थीं। प्रस्तुत पाठ में उन्हीं के गुणों का उल्लेख है।

अत्युक्ति—किसी बात को अधिक बढ़ाकर कहना। उत्कट—तीव्र। असामान्य—जो साधारण न हो। विस्मरण—भूलना। पावन—पवित्र। अर्वाचीन—नवीन। अनेकांगी—विविध अंगोंवाली।

## १४—पेनिसिलीन

इस पाठ में श्री भगवतीप्रसाद जी ने पेनिसिलीन का आविष्कार और उसकी उपयोगिता आदि का सविस्तार वर्णन किया है।

सर्वोपरि—सबसे श्रेष्ठ। टेस्ट ट्यूब—शीशे की एक पतली नली जिसमें पदार्थ रखकर निरीक्षण किये जाते हैं। मित्रराष्ट्र—इंगलैंड और अमेरिका इत्यादि। राज्य यक्ष्मा—तपेदिक। विक्षत—घायल। घातक—प्राण लेने वाला।

## १५—फाँसी

यह एकांकी नाटक है। इसके तीन पात्र हैं—कवि, मजदूर और पूँजीपति। कथोकथन के रूप में तीनों ने पूँजी की वास्तविकता पर प्रकाश डाला है।

परिणत—बदला हुआ। आलम—जगत। निर्झर—झरना। पल्लवों—पत्तों। विहग—पक्षी। कलात्मक—कलापूर्ण। प्रतीक—चिन्ह। एकीकरण—एक में मिलाना। विप्रलंभ—वियोग। उत्कर्ष—उन्नति, बढ़ती। निराकरण—खंडन करना।

## १६—हंस का नीर-क्षीर विवेक

इस पाठ में आचार्य द्विवेदी जी ने अनेक प्रचलित प्रकारों मे से नीर-क्षीर विवेक सम्बन्धी मिथ्या धारणा पर युक्तियुक्त विचार प्रकट किये है। हंस का नीर-क्षीर विवेक किस दृष्टि से सत्य है—इसकी सप्रमाण मीमासा भी की है।

प्रवाद—मिथ्या धारणा। सायणाचार्य—एक टीकाकार ऋषि। जलरुह—जल मे उत्पन्न होने वाले पौधे, कमल आदि। मृणालदंड—कमल की डडी। विषतन्तु—कमल नाल के तोड़ने से जो श्वेत-श्वेत सूत की भाँति एक वस्तु निकलती है। प्रवाही—शीघ्र बहने वाला। द्विज—ब्राह्मण, पक्षी। शुक्तियाँ—सीपे।

## १७—संस्कृत में वर्षा वर्णन

वर्षा का हमारे जीवन से अधिक सम्बन्ध है। यही कारण है, कि संस्कृत और हिन्दी के काव्यों मे वर्षा का अधिक वर्णन मिलता है। संस्कृत के काव्यों मे वर्षा को किस प्रकार चित्रित किया गया है—प्रस्तुत पाठ में इसी का चित्रण है।

नवोल्लास—नवीन हर्ष, उमंग। प्रेरणा—उत्तेजना। सोपान—सीढ़ी। प्लावित—डूबा हुआ। उच्छ्वास—साँस। आच्छादित—ढँका हुआ। प्रपातो—झरनो। अभिसारिकाओ—नायिका विशेष जो किसी संकेत स्थल पर अपने नायक से मिलने जा रही हो। प्रतिबिम्ब—परछाईं। ऊहात्मक—तर्क युक्त। उद्दीपन—उत्तेजित करने की क्रिया। सूत्री—लडकी। वैदूर्य मणि—एक मणि विशेष। निर्दिष्ट—निश्चित।

## १८—लोकनायक तुलसीदास

प्रस्तुत पाठ प० हजारीप्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' से उद्धृत किया गया है। इसमें लेखक ने यह सिद्ध किया है, कि तुलसीदास जी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी समन्वयवाद की प्रवृत्ति

है और इस दृष्टि से राम-कृष्ण के सदृश वे भी हमारे जनसमाज के एक सुन्दर लोकनायक हैं।

डाक्टर ग्रियर्सन—एक प्रसिद्ध अंगरेज विद्वान। इन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य सम्बन्धी अनेक लेख लिखे हैं। उच्चतर—ऊँची श्रेणी। अलख—जो देखा न जा सके। दुर्वह—जो ढोया न जा सके, अर्थात् जिसको लेकर चलना कठिन हो। विशृङ्खल—व्यवस्था रहित। विच्छिन्न—तितर-बितर। दूर विभ्रष्ट—दूर जाकर गिरे हुए। दिग्गज पंडितों—बड़े बड़े विद्वानों। समन्वय—सामंजस्य। उद्भावित—आविष्कृत। प्रत्याख्यान—प्रतिवाद। वैयक्तिक—एक मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाला। मेरुदंड—पीठ की हड्डी, प्रधान केन्द्र।